अभिनव भारती ग्रन्थमाला—५

बौद्ध धर्म

लेखक

श्री गुलाबराय एम० ए०, एल-एल० बी०

कर्तव्य शास्त्र, तर्क शास्त्र, नवरस आदि ग्रन्थोंके लेखक,

सेन्टजान्स कालेज आगरामें हिन्दीके अध्यापक,

'साहित्य सन्देश' के सम्पादक इत्यादि ।

सम्पादक

हजारीप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक—
गिरिजाशङ्कर वर्मा
अभिनव भारती ग्रन्थमाला
१७१-ए, हरिसन रोड,
कलकत्ता

प्रथम बार
अगस्त, १९४१
मूल्य १।)

मुद्रक—
जैनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लिमिटेड
८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता

सम्पादकीय वक्तव्य

बौद्ध धर्म और बौद्ध साहित्य भारतीय साधनाके इतिहासमें अत्यन्त महत्वपूर्ण आसनके अधिकारी हैं। आजका भारतवर्ष जिन उपादानोंसे बना है उनकी पृष्ठभूमिमें भूला हुआ और खोया हुआ बौद्ध विचार है। हिन्दीमें अभी इस विषयकी चर्चा कम ही हुई है। कई विद्वानोंने मूल पाली ग्रन्थोंका हिन्दी भाषान्तर करके इस अभावकी पूर्ति की है, फिर भी हिन्दीमें ऐसी पुस्तकका अभाव ही है जिसमें बौद्ध धर्म, समाज और साहित्यकी एक ही जगह विवेचना की गयी हो। श्री गुलाबरायजीकी प्रस्तुत पुस्तक इस अभावकी कुछ पूर्ति करती है। इसमें बौद्ध धर्मके विभिन्न पहलुओंका सरल ढङ्गसे विवेचन किया गया है। आशा है अभिनव भारती ग्रन्थमालाके पाठक इससे उपकृत होंगे।

पुस्तक छपनेके पहले कई सुयोग्य विद्वानोंके हाथसे गुजर चुकी है। सबसे पहले सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान भदन्त श्री आनन्द कौसल्यायनजीने इसकी पाण्डुलिपि देखी थी और जो अंश उन्हें सन्देहास्पद लगे उनपर निशान कर दिया था। इसके बाद शान्तिनिकेतनके पाली और संस्कृत आदिके अध्यापक विद्वद्वर श्री नित्यानन्द विनोद गोस्वामीजीने भी इसे देखा है। गोस्वामीजीने विशेष रूपसे उन अंशोंको देखा जिनपर कौसल्यायनजीने चिह्न लगा दिये थे। पुस्तकके सम्पादनमें इन दो विद्वानोंके मार्ग प्रदर्शनसे सम्पादकको विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ा है। गोस्वामीजीने उचित परामर्श देकर लेखक और सम्पादक दोनोंको कृतज्ञ बनाया है। उनकी सहायता पाये बिना पुस्तक सुसम्पादित नहीं हो पाती।

पुस्तक जब प्रेसमें थी तभी सम्पादककी आंखोंमें एक ऐसा रोग हुआ जो अब तक ठीक नहीं हो सका है। यही कारण है कि छपाईमें—विशेषकर अन्तिम पृष्ठोंमें—गलतियोंके रह जानेकी सम्भावना है। सम्पादक उसके

लिये उदार पाठकोंसे क्षमा चाहता है। पहले सोचा गया था कि सम्पादककी ओरसे एक विस्तृत भूमिका दी जायगी पर आंखोंके कारण उस कार्यको भी रोक रखा गया क्योंकि पुस्तकके प्रकाशनमें अनावश्यक देर हो रही थी।

हिन्दीभवन; शान्तिनिकेतन
श्रावणी पूर्णिमा, १९९८

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

विषय-सूची

बौद्ध धर्म



महात्मा बुद्ध

बौद्ध धर्म

१

बुद्धदेवका जीवनचरित्र

कारुण्यकल्लोलितदृष्टिपातं कन्दर्पदर्पानलकालमेघम् ।
वैकल्पकल्पद्रुममूलकन्दं वन्दे महः कन्दलमर्कबन्धुम् ॥

नैपालकी तराईमें कपिलवस्तु नामक एक छोटासा राज्य था। वह राज्य महर्षि कपिलकी आज्ञासे, उन्हींके नामपर, इक्ष्वाकु वंशी महाराज सुजातके अवपुर आदि पांच राजकुमारोंने, जो श्रीरामचन्द्रजीकी भांति अपनी विमाताकी योजनासे वनवासी हुए थे, नींव डाली थी। यह लोग पीछेसे शाक्यवंशी कहलाने लगे थे। इसी वंशमें महाराज शुद्धोदन बड़े प्रतापी एवं धर्मात्मा राजा हुए।

पैंतालीस वर्षकी अवस्थामें महाराज शुद्धोदनकी पटरानी महामाया गर्भवती हुई थीं। रानी महामायाकी यह अभिलाषा थी कि उनका यह प्रसव-कार्य्य उनके मातृगृहमें हो। इस हेतु महाराज शुद्धोदनने रानी महामायाकी देवदह जानेकी तैयारी कर दी। इस यात्राके बीचमें रानी महामाया लुम्बिनी-काननमें, जो कि महाराज शुद्धोदनका एक विहार-स्थल था, ठहरीं थीं। वहींपर प्रसव-वेदना बढ़ी और वैशाखकी पूर्णिमा को बुद्धदेवका जन्म हुआ। किन्तु महामाया देवी अपने पुत्रके जन्मके छः या सात दिनों पश्चात् परलोक सिधार गईं। पुत्रके पालनका भार उनकी विमाता और छोटी मौसी रानी प्रजावती (महाप्रजापती) पर पड़ा। उन्होंने कुमारका बड़ी सावधानीके साथ लालन-पालन किया।

अन्य महापुरुषोंके जन्मके समय उनकी महत्ता सूचनार्थ जैसी अतिप्राकृत घटनाओंका वर्णन शास्त्रोंमें देखनेमें आता है वैसी ही घटनाओंका होना बुद्धदेवके जन्मके समय भी बतलाया जाता है। उनका कुछ काव्य-मय वर्णन पद्यचूणामणिसे दिया जाता है।

शाखासु शाखासु समुद्भवद्भिर्विचित्रपत्रैः शतपत्रजातैः।
चकाशिरे तस्य विलोकनाय संजातनेत्रा इव शाखिनोऽपि ॥ ३-१२

अर्थात् वृक्षोंकी प्रत्येक शाखाओंमें विचित्र रंग विरंगे पत्रोंके साथ कमलोंके समूह निकल आए जो ऐसे मालूम होते थे मानो वृक्ष सिद्धार्थके दर्शनके लिये नेत्रवाले हो गये हैं।

तालप्रमाणाः सहसा धरित्रीं भित्त्वा समुत्तस्थुरुदप्रवाहाः।
पुण्यात्मनस्तस्य नमस्क्रियार्थं भुजङ्गलोका इव शेषवंश्याः ॥ ३-१६

अर्थात् सहसा पृथ्वीको फोड़कर ताड़ वृक्षोंके बराबर ऊंचे जलके प्रवाह उठ खड़े हुए वह ऐसे मालूम होते थे कि मानों शेषनागके कुटुम्बी सर्पगण उस पुण्यात्माको नमस्कार करनेके लिये बाहर निकल आये हों।

जातः पृथिव्यामधिपो मुनीनामिति ब्रुवाणा इव विष्टपानाम्।
माङ्गल्यशङ्खानकमर्दलाद्यवाद्यप्रभेदाः स्वयमेव रेणुः॥ ३-१८

अर्थात् मङ्गलसूचक शङ्ख, आनक, मर्दल आदि वाद्य स्वयं ही बजने लगे मानों यह कह रहे हैं कि संसारमें मुनियोंके अधिपतिका जन्म हो गया है।

ववर्ष वर्षा समयं विनापि वलाहको वारिधिधीरघोषः।
आश्चर्य कर्माणि बभूवुरित्थं जाते सतामग्रसरे कुमारे॥ ३-२१

अर्थात् गम्भीर शब्द करनेवाले बादल समयके बिना ही बरसने लगे। इस प्रकार सज्जनोंमें अग्रगण्य कुमार सिद्धार्थके जन्मके समय आश्चर्य कर्म हुए।

वे महापुरुषोंके सब शुभ चिन्होंसे सुशोभित थे। वे संसारमें आकर महान् कार्य्य करेंगे ऐसी भविष्यवाणी आचार्यों और पण्डितोंने जन्मकालपर ही कर दी थी। वह भविष्यवाणी पूरी हुई। नव-जात कुमारका नाम सिद्धार्थ रक्खा गया, क्योंकि इसके सब अर्थ (मनोरथ) सिद्ध होनेवाले थे।

कुमार सिद्धार्थने यथाविधि गुरु-गृहपर रहकर विद्या प्राप्त की थी एवं अल्प कालहीमें अपनी प्रखर-प्रतिभाके कारण सर्व शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया। इस विद्याने उसके नैसर्गिक विनयादि गुणोंको द्विगुणित कर दिया और इस प्रकार "विद्या ददाति विनयं" की लोकोक्तिको सार्थक किया। समावर्तन-संस्कार होनेपर कुमार सिद्धार्थ अपने पिताके साथ रहने लगे।

राजकुमारका संसारसे वैराग्य तथा ध्यानमें मग्न रहना महाराज शुद्धोदन-से छिपा न रह सका, अतः उनका चित्त चिन्ताकुल होने लग गया। अपने पुत्रकी सांसारिक विषयोंमें प्रवृत्ति बढ़ानेके निमित्त तथा उनको विवाह योग्य देख महाराज शुद्धोदनने कुमार सिद्धार्थका विवाह देवदहकी राजकुमारी यशो-धरा (गोपा) के साथ कर दिया। विवाह तो हो गया किन्तु वह राजकुमार-की वैराग्य-वृत्तिको न बदल सका। महाराजने अनेकानेक प्रकारकी विलास-

सामग्री एकत्रित कर दी । भिन्न भिन्न ऋतुओंके अनुकूल राजकुमारके रहनेके निमित्त प्रासाद एवं उद्यान बनवा दिये । जब कुमार सिद्धार्थकी अवस्था अट्ठाईस वर्षकी हुई तब महाराज शुद्धोदनको पौत्रका मुख देखनेकी आशा हुई । वही समय सिद्धार्थके संन्यासका अवसर हुआ ।

संसारसे तो शाक्यकुमारको स्वाभाविक अरुचि थी ही किन्तु जब उन्होंने अपने भ्रमणमें एक जर्जर वृद्ध-पुरुष, रोगी, शव तथा संन्यासीको देखा तब उनके मनमें संसारकी क्षणभंगुरता और भी खटकने लगी। वह सोचने लगे जब सबको इस अवस्थाको पहुंचना है तो भोग-विलाससे क्या ? संसारको जरा-मरणके भयसे मुक्त होना चाहिये । सारे संसारसे उनको विरक्ति हो गई । जरा की सम्भावनावाले यौवन, व्याधिसे ग्रस्त होनेवाले स्वास्थ्य और अस्थिर जीवन एवं रति-रंगमय हास-विलास यह सब क्षणभंगुरताके कारण उनकी जुगुप्साके पात्र बन गये—

धिग् यौवनेन जरया समभिद्रुतेन, आरोग्य धिग्विविधव्याधिपराहतेन ।
धिग् जीवतेन पुरुषो न चिरस्थितेन, धिक् पंडितस्य पुरुषस्य रतिप्रसंगैः ॥

उन्होंने अपने पितासे अपनी इच्छा प्रकट की । यह सुन पिताको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने अपने पुत्रको उसके दृढ़ संकल्पसे फेरनेके अनेक उपाय किये; किन्तु यह सब निष्फल हुए । राजकुमारने कहा कि यदि कोई इस बात का निश्चय करा दे कि वह रोग-ग्रस्त न होवेंगे, वृद्धावस्थाके क्लेशोंसे वह पीड़ित न होवेंगे, तथा मृत्युके आक्रमणसे निर्भय हो जावेंगे तो वह अवश्य ही संन्यासके संकल्पका त्याग कर देंगे । परन्तु महाराजा शुद्धोदन क्या, कोई भी ऐसी सांसारिक शक्ति नहीं जो मनुष्यको जरा-मरणके भयसे छुड़ा दे। राजकुमार अपने संकल्पमें दृढ़ रहे ।

कुछ दिनोंके अनन्तर गोपाके गर्भसे पुत्र उत्पन्न हुआ। कुमार सिद्धार्थ पितृ-ऋणसे मुक्त हो गये। सारे राज्यमें हर्षोत्सवकी धारा बह रही थी; किन्तु कुमारका हृदय संसारके दुःखसे दुखी था। उन्हें रात्रिमें निद्रा नहीं आई। गृहमें अपनी सुप्ता स्त्री तथा नवजात शिशुका दर्शन करनेके लिये भीतर राज-भवनमें प्रविष्ट हुए। क्षण भरमें संसारके अन्तिम बन्धनके ऊपर विजय-लाभ पाकर वह घरसे बाहर आये। अपने अश्वको सजाकर, अपने सारथी छन्दकको साथ लेकर, अर्धरात्रिकी निस्तब्धतामें, कुमारने गृह त्याग किया।

इस अन्तिम विदाका पं० रामचन्द्र शुक्लने बुद्ध-चरित्रमें, बहुत ही उत्तम वर्णन किया है।

त्यागत हौं मैं आज आपनो यह यौवन धन,
राजपाट, सुखभोग, बन्धु-बान्धव औ परिजन,
सब सों बढ़ि भुजपाश प्रिये! तव तजत मनोहर,
तजिबो जाको या जगमें है सब सों दुष्कर।
पै तेरो निस्तार जगतके संग बनि ऐहैं,
वाहू को जो गर्भ बीच तव कछु दिन रैहै—
है जो फल लहलहे प्रेम को प्रथम हमारे—
यै देखन हित ताहि रहौं तो धैर्य्य सिधारे।
हे पत्नी, शिशु, पिता और मेरे प्रिय पुरजन!
कछुक दिवस सहि लेहु दुःख जो परिहै या छन।
जासों निर्मल ज्योति जगै सो अति उजियारी,
लहैं धर्म को मार्ग सकल जग के नरनारी।
अब यह दृढ़ संकल्प; आज सब तजि मैं जैहौं,
जब लौं मिलि है नाहिं तत्त्व सो, नहिं फिरि ऐहौं॥"

कपिल वस्तुसे छः योजन पर अनोमा नदीके तट पर पहुंच कुमार घोड़ेसे उतर पड़े और अपने वस्त्राभूषण छन्दकको सौंप, उसे कपिलवस्तु लौटनेकी आज्ञा दी। छन्दककी स्थिति सुमन्तसे कुछ खराब ही थी। सुमन्त तो सबके जानते हुए मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीको वन पहुंचाने गया था। छन्दक तो कुमारके कठोर व्रत पालनमें सहायक बना था। छन्दकको लौटाते समय कुमारने पितृ-चरणोंमें यह संदेशा भेजा था कि 'आप मेरे लिये शोक न कीजियेगा। बुद्धत्व प्राप्त कर शान्त चित्तसे मैं लौटूंगा।'

बुद्धदेवकी यशोधरा देवीने शोक-विह्वल होकर छन्दकको उपालम्भ करते हुए कहा—

प्रियेण वश्येन हितेन साधुना त्वया सहायेन यथार्थकारिणा।
गतोऽयंपुत्रोह्यपुनर्निवृत्तये रमस्व दिष्ट्या सफलः श्रमस्तव ॥३४॥

तुम प्रिय थे, अपने आधीन थे, हित करनेवाले थे, सज्जन थे, समय पर ठीक ठीक कार्य्य करते थे और तुम्हारी ही सहायतासे मेरे प्राणाधार न लौटने के लिये चल दिये। आनन्द करो, तुम्हारा श्रम सफल हुआ।

वरं मनुष्यस्य विचक्षणो रिपुर्न मित्रमप्राज्ञमयोगपेशलं।
सुहृद्ब्रुवेणाह्यपश्चिता त्वया कृतः कुलस्यास्य महानुपल्वः॥

मनुष्यका यदि शत्रु बुद्धिमान हो तो अच्छा है। मूर्ख एवं मौका न समझने वाला मित्र ठीक नहीं। मित्र कहानेवाले मूर्ख, तुमने आज मेरे सब वंशका नाश कर दिया।

अनर्थकामोऽस्यजनस्य सर्वथा तुरङ्गमोऽपिध्रुवमेष कन्थकः।
जहार सर्वस्वमतस्तथाहि मे जने प्रसुप्तेनिशि रत्नचोरवत् ॥३८॥

वह कन्थक नामका अश्व भी अवश्य ही मेरा अहित चाहने वाला है, जो मेरा सर्वस्व रात्रिके समय सब लोगोंके सोने पर चोरोंकी भांति ले गया।

यदा समर्थः खलु सोढुमागतानिषुप्रहारानपि किं पुनः कशाः।
गतः कशापातभयात् कथं त्वयं श्रियं गृहीत्वा हृदयं च मे समम् ॥३८॥
(बुद्धचरित, अष्टम सर्ग)

यह अश्व जब आये हुए बाणोंको भी सह सकता है तब इसके लिये कोड़ा है ही क्या, जो यह कोड़ोंके भयसे मेरी सम्पत्ति और मेरा हृदय लेकर चल दिया।

ज्यों ही छन्दक कपिलवस्तु पहुंचा और कुमारका सन्देशा महाराज शुद्धोदनको सुनाया त्यों ही सारा राज्य शोक-सागरमें निमग्न हो गया। चारों ओर खोज जारी हुई किन्तु कुमारका कहीं भी पता न चला। "बुद्धत्व प्राप्त कर शान्त चित्तसे मैं लौटूंगा" बस इसी पर सन्तोष कर सब कोई शान्त रहे।

छन्दकके चले जाने पर शाक्य कुमारने ब्रह्मचारीका वेश धारण किया तथा कुछ दिनों तक वैशालीमें रहे। वहाँ पर यह सुन करके कि राजगृहमें रुद्रक नामक एक बड़े भारी पण्डित रहते हैं, उनसे मिलनेके हेतु राजगृह गये। वहाँ पर इनकी ख्याति चारों ओर फैल गई। वहाँके राजा बिम्बसार इनके दर्शन करनेको आये। साधु-वेषमें भी इनकी राजश्री छिपाये नहीं छिपती थी। यह जानकर कि साधुवेषधारी नवागन्तुक भिक्षावृत्तिके योग्य नहीं वरन् राज्य-सुखोपभोगके लिये है, महाराज बिम्बसारने इन्हें अपना राज्य समर्पण करना चाहा। गौतमको यदि राज्य करनेकी लालसा होती तो अपने ही राज्यको तिलाञ्जलि देकर यह भिक्षावृत्ति क्यों स्वीकार करते? उन्होंने कामोपभोग तथा राज-सुखकी क्षणभंगुरता बताकर राज्यपद ग्रहण करनेमें, विनयपूर्ण शब्दों द्वारा असम्मति प्रकट की। गौतम थोड़े काल तक रुद्रकके यहां और बादमें एक अन्य आचार्य आलारकालामके यहाँ रहे। वहाँ पर उनको पूर्ण सन्तोष न हुआ और ज्ञान प्राप्त करनेके अर्थ आगे चल दिये। वहाँसे पंचभद्रवर्गी ब्रह्म-

चारीगण इनके साथ हो लिये और उन्होंने भी इनके साथ ज्ञान प्राप्त करनेका निश्चय किया।

यह सब लोग गयाकी ओर चल दिये। वहाँ पहुंचकर उन्होंने इन ब्रह्मचारियोंके साथ रह कर नाना प्रकारकी तपश्चर्या की। अनशन-व्रतोंके कारण इनका शरीर बिलकुल कृश हो गया। अपनी शारीरिक निर्बलताके ऊपर विचार करते हुए उन्होंने निश्चय किया कि यह तप-व्रत साधन मात्र हैं। यदि इस तप द्वारा मैं अपने शरीरको नष्ट कर दूंगा तो न अपनी ही ज्ञान-पिपासाकी तृप्ति कर सकूंगा और न दूसरोंको ही लाभ पहुँचा सकूंगा। ऐसा विचार कर उन्होंने इस प्रकारके जीवनसे विराम करनेका निश्चय किया।

तपश्चर्याका त्यागना उन ब्रह्मचारियोंको रुचिकर न हुआ। उन्होंने इसको गौतमके हृदय-दौर्बल्यका सूचक समझा। वह उनका असली अभिप्राय न समझ सके तथा गौतमका साथ छोड़कर काशीकी ओर लौट गये। गौतम कुछ दिनोंके पश्चात् गयामें बोधि तरुके नीचे समाधि लगाकर बैठे। हमारी इच्छाएँ एवं वासनायें हमारे सत्कार्यों में बाधक होती हैं। इन्हीकी मूर्तिमान सत्ता स्वरूप मार (कामदेव) बोधिसत्वके कार्यों में विघ्न डालनेको उपस्थित हुआ। उसकी रति-प्रीति और तृष्णा नामक कन्याओंने बोधिसत्वकी समाधिमें अनेक बाधाएं डालनी चाहीं, किन्तु वह विचलित न हुए। बोधिसत्वने कामकी सब सेनाओंको पराजित कर दिया। अन्तमें मारने स्वयं झूठी सच्ची बातें लगा बोधिसत्वका प्रलोभन करना चाहा किन्तु उसको अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ी। कामके ऊपर विजय प्राप्त कर बोधिसत्वका मन शान्त तथा निश्चल होगया। उनकी समाधिमें कोई बाधा डालनेवाला न रह गया।

वैशाखकी पूर्णिमाको अनेक प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होनेके पश्चात् उनको बुद्धत्व प्राप्त हो गया। उनको संसारका सारा रहस्य प्रकट हो गया।

उनको सारा संसार दुःखमय प्रतीत होने लगा। उसीके साथ उनको दुःखके कारण तथा उनके निरोधका उपाय भी ज्ञात हो गया। चार आर्य्य-सत्योंमें बुद्ध-धर्म की नींव पड़ी। वह चार आर्य्य-सत्य इस प्रकारसे हैंः—

(१) दुःख है।

(२) दुःख-समुदाय अर्थात् दुःखकी उत्पत्ति होती है।

(३) दुःख-निरोध अर्थात् दुःखका निरोध संभव है।

(४) दुःख-निरोध गामिनी प्रतिपदा अर्थात् दुःख-निरोधको पहुंचानेवाला मार्ग भी है।

इन सबकी व्याख्या आगे की जायेगी। बोधि ज्ञान प्राप्त करने पर बुद्धदेवने सात सप्ताह बोधि तरुके आस पास ही व्यतीत किये।

अपने कठिन अनुभवको प्राप्त किये हुये आर्य्य-सत्योंको बुद्धदेवने गोपनीय रहस्य न रख, उनको संसारके लाभार्थ प्रकाशित करनेका संकल्प किया; किन्तु इसके साथ उनको यह विचार हुआ कि इन आर्य्य-सत्योंका महत्त्व सब लोग एकाएक नहीं समझेंगे। इस सम्बन्धमें उनको उन पाँच ब्रह्मचारियोंका स्मरण आया जिन्होंने उनके साथ गयाक्षेत्रमें तपश्चर्या की थी। उनकी खोजमें काशीको चल दिये। वहां पर पंचवर्गीय ब्रह्मचारियोंके आश्रममें पहुंचे। उन्होंने पहले तो बुद्धदेवका विश्वास न किया कि उन्होंने बुद्धत्त्व प्राप्त कर लिया है किन्तु बादको शीघ्र ही बुद्धदेवके महत्त्वपूर्ण वार्तालापसे प्रभावित हो, उनकी बुद्धत्व प्राप्तिमें विश्वास कर लिया। फिर उनको भगवान् बुद्धने अपने धर्म-चक्रका उपदेश दिया एवं उनको काम-वासनाओंमें लिप्त रहकर सुख-विलासमें जीवन व्यतीत करना और शरीरको नाना प्रकारके क्लेश देकर उसको नष्ट करना, इन दोनों अन्तोंके बीचका, मध्यमा प्रतिपदा नामक मार्ग बतलाया। इस उपदेशको ग्रहण कर उन्होंने सहर्ष दीक्षा ली। इस प्रकार बुद्धदेवका संघ

बढ़ने लगा, और वह लोग उनके साथ रहकर धर्मोपदेश सुननेमें अपना समय व्यतीत करने लगे।

कुछ दिन इसिपत्तन (सारनाथ)में और रहकर भगवान् बुद्धदेवने वहाँसे राजगृहकी ओर प्रस्थान किया। मार्गमें प्रतिमा नदीके किनारे अनुपीय नामक आम्रवनमें वह ठहरे थे। यह वही स्थान है जहाँसे उन्होंने अपने सारथी छन्दकको बिदा किया था। यहाँपर शाक्यवंशीय छः राजकुमारोंने उपालि नामक नापितके साथ बुद्धदेवकी शिक्षा ग्रहण की, तथा ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर सङ्घमें सम्मिलित हुए। इन शिष्योंमें आनन्द, देवदत्त, उपालि और अनिरुद्धका नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। आनन्द, बुद्धदेवके शिष्योंमें सर्व-प्रिय थे। देवदत्त भी आनन्दकी भाँति बुद्धदेवके स्वजनोंमेंसे थे, किन्तु यह बुद्धदेवके विरोधी एवं प्रतिद्वन्दी बन गये थे। पाली ग्रन्थोंके अनुसार देवदत्त बुद्धदेवके ममेरे भाई भी थे और साले भी। क्योंकि बुद्धदेवकी पत्नी यशोधरा इन्हींकी बहन थीं। उपालि जातिके नापित थे किन्तु अपने धार्मिक भाव और मानसिक शक्तियोंके कारण सङ्घके बड़े भारी नेता बन गये थे। यह विनय पिटकके और आनन्द सुत्त पिटकके संग्रहकर्ता हुए। यह बात इसका प्रमाण है कि बुद्धदेव वर्ण-भेदकी कितनी कम परवाह करते थे। अनिरुद्ध बौद्ध धर्मके बड़े अच्छे व्याख्याता हुए। कहा जाता है कि इनको दिव्य चक्षु प्राप्त हो गई थीं।

इस प्रकार राजगृहमें अपने नये शिष्योंके साथ वास करके अनाथपिण्डद नामक वणिक्के निमन्त्रण पर स्रावस्ती गये। इस वैश्यने इनके लिये जेतवन नामक विहार बनवाया। कहा जाता है कि यह बाग जेत नामक राजकुमारका था। इसकी शोभाको देखकर इसने विचारा कि यह स्थान भगवान् बुद्धके ठहरनेके योग्य है। उसमें विहार बनवानेके अर्थ उसने इस उद्यानको खरीदना

चाहा। राजकुमार देनेको तैयार न था। बहुत आग्रह करनेपर राजकुमार इस शर्तपर राजी हो गया कि यदि अनाथपिण्डद इसके मूल्यमें इतना स्वर्ण दे जो कि उसकी भूमिपर बिछाया जा सके तो वह उस बागको दे सकेगा। यह सुनकर अनाथपिण्डदको बड़ी प्रसन्नता हुई और वह उसमें सोना बिछवाने लगा। जब राजकुमारको ज्ञात हुआ कि वह बुद्धदेवके लिये क्रय किया जाता है, तो उसने आधा सोना छोड़ दिया और कहा कि मैं अपनी ओरसे इन वृक्षोंको बुद्ध-देवको समर्पित करता हूँ। जमीन तुम्हारी तथा वृक्ष हमारे रहें।

बुद्धदेवको यह स्थान बहुत प्रिय था। यहाँ उन्होंने कई चौमासे व्यतीत किये थे और अपने सङ्घको बहुतसी उत्तमोत्तम जातक कथाएं सुनाईं एवं सिद्धान्त बतलाये। इस प्रकार बुद्धदेवने कई स्थानोंमें बीस चतुर्मास बिताए। अन्तके पचीस चतुर्मास श्रावस्ती ही में बिताए। वहाँके दिये हुए उपदेशोंसे पिटक भरे पड़े हैं।

देवदत्तके साथ जो विरोध बढ़ा है वह भी बुद्ध सङ्घमें बड़े महत्त्वका है। देवदत्त यशोधराके भाई लगते थे। यद्यपि वह बुद्धदेवके शिष्य थे तथापि वह उनकी महत्तासे ईर्षा रखते थे और चाहते थे कि येनकेन प्रकारेण स्वयं भी उनकी सी ख्याति प्राप्त कर लें।

देवदत्तने संघके नियमोंमें दोष देखना आरम्भ कर दिया और अपनेको बुद्धदेवसे बड़ा सिद्ध करनेके हेतु नियमोंको बहुत नरम बतलाया तथा उन्हें कड़ा बनानेका यत्न किया। देवदत्त राजगृह चले गये और वहाँ राजा बिम्बसारके पुत्र अजातशत्रुके पास रहने लगा। अजातशत्रुने उसके लिये एक विहार बनवा दिया। वहाँपर रहकर उसने एक नवीन सम्प्रदाय स्थापित किया। जब भगवान् बुद्ध स्वयं राजगृह पहुँचे तो देवदत्त उनसे मिलने गये तथा अपने बनवाये हुए कठिनतर नियमोंके लिये उसने अनुमति चाही। बुद्धदेवने

अनुमति न देकर कहा कि यद्यपि शरीर पापमय है तथापि इसको नष्ट करनेका उद्योग करना ही श्रेयस्कर नहीं है। यह सुकार्य्योंका भी साधन है। जिस दीपकमें तेल बत्ती न रहेगी वह तुरन्त बुझ जायगा। न तो सुखोपभोगमें पड़ा रहना चाहिये और न शरीरको कष्ट देना परम लक्ष्य मान अन्य सब अच्छी बातोंको भूल जाना चाहिये। यदि किसीको कठिनतर व्रत धारण करनेकी आवश्यकता हो तो वह प्रसन्नतासे धारण करे किन्तु सब लोग उनके पालन करनेके लिये बाधित न किये जायँ।

देवदत्तको यह बहुत बुरा लगा कि उनकी बात न मानी गई। वह बुद्धदेवकी और भी निन्दा करने लगे। बुद्धदेवने यह सुनकर कहा कि ऐसा कोई नहीं है जिसपर दोष न लगाया जाता हो। यदि कोई चुप रहे तो दोषी ठहराया जाता है और यदि बोले तौभी दोषी ठहराया जाता है। जो मध्य-पथ बतलाया गया है वही श्रेष्ठ है।

देवदत्तने अजातशत्रुको अपने पिताके विरुद्ध षड्यन्त्र रच उनसे राज्य छीन लेनेकी सलाह दी। जब अजातशत्रु राजा हो गया, तब उसने बुद्धदेवको मार डालनेकी आज्ञा दी। मारनेवाले जब बुद्धदेवके पास पहुँचे, उनकी शान्तिको देख अपना कार्य्य भूल गये एवं उनके शिष्य हो गये। तब एक मतवाला हाथी छोड़ा गया किन्तु वह भी अपने मदको भूल गया। एक पत्थर पहाड़ परसे सरकाया गया जिसके नीचेसे बुद्धदेव जा रहे थे किन्तु उससे बुद्धदेव बच गये। थोड़ी चोट अवश्य लग गई। जीवक नामक वैद्य चिकित्साके लिये बुलाया गया। वह बड़ा श्रद्धावान् एवं धर्मात्मा था। उसने महाराज बुद्धदेवसे पूछा कि क्या आपको भी त्रिविध-ताप सताता है? इसपर भगवान्ने उत्तर दिया—

गतद्धीनो विसोकस्य विप्पमुत्तस्स सब्बधी।
सब्बगंथपहीनस्य रागद्दोसा न विज्जति॥

अर्थात् रोगहीन, शोकहीन, सर्वची तथा विप्रमुक्त मनुष्यको जिसकी ग्रन्थियां छूट गई हैं, शोक अवश्य होता है, किन्तु उस कष्टसे उसे राग-द्वेष नहीं उत्पन्न होता, वह संसारका धर्म समझ उसे सहता है, सारांश यह है कि:—

देह धरेको दण्ड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगतें ज्ञान सों, मूरख भुगतें रोय॥

दुःखसे ज्ञानीका मन विचलित नहीं होता।

राजा अजातशत्रु जब अपने सब दुष्प्रयोग करके हार गया तब वह बुद्धदेवकी शरणमें आया और उन्होंने उसे सदुपदेश दे शान्त किया। देवदत्त भी पीछेसे रोग-ग्रस्त हो गये। अब वे अपनी कृतिपर लज्जित हुए। उन्होंने अपने शिष्योंसे बुद्धदेवके पास ले चलनेकी इच्छा प्रकट करते हुए कहा "बुद्धदेव मेरे सम्बन्धी होते हुए मुझे अवश्य क्षमा कर देगें। तुम लोग तुरन्त ही मुझे उनकी शरणमें ले चलो।" उनकी आज्ञानुसार उनके शिष्योंने उन्हें पालकीमें बुद्धदेवके पास ले जानेका प्रबन्ध किया। राहमें बाहकोंने पानी पीनेके लिये पालकीको जमीनपर रख दिया। वह जल्दी और असावधानीके कारण पालकीमेंसे बाहर आये, किन्तु बाहर आते ही उनके पैर जलने लगे और बुद्धको स्मरण करते हुए उन्होंने शरीर त्याग दिया।

इन घटनाओंके पश्चात् बुद्धदेव राजगृहसे श्रावस्ती आ गये और वहाँ जेतवन विहारमें रहने लगे। इस प्रकार आगे पच्चीस वर्षतक बुद्धदेवने चतुर्मास श्रावस्ती हीमें व्यतीत किये; बीचमें पर्य्यटनके लिये चले जाते थे और चतुर्मास के समय वहाँ लौट आते थे। शरीर शिथिल हो जानेपर भी सालमें एक बार पर्य्यटनके लिये अवश्य ही बाहर जाते थे।

बुद्धदेव श्रावस्तीमें पैंतालीसवां चतुर्मास समाप्त कर वहाँसे राजगृह को चले। वहाँ पहुँचनेपर वह गृध्रकूट नामक पर्वत पर ठहरे। उस समय मगधके

राजा अजातशत्रुने वृजि जातिपर आक्रमण करनेका इरादा किया। अपने मन्त्रिवर्गसे सलाह लेकर यह निश्चित किया कि आक्रमण करनेसे पूर्व वह बुद्धकी भी सम्मति ले लें। सम्मतिके लिये अजातशत्रुकी ओरसे वर्षकार नामक प्रधान मन्त्री भेजे गये। इन्होंने वहाँ जाकर बुद्धदेवको अजातशत्रुका सन्देश सुनाया। उन्होंने कहा "हमारे महाराज आपकी सम्मति चाहते हैं— वृजि-जातिपर यदि वे आक्रमण करें तो सफल मनोरथ होंगे अथवा नहीं।" बुद्धदेवने सोच विचार कर कहा "हे ब्राह्मण! जबतक वृजि-जातिमें एकता है, जबतक वे मिलकर कार्य्य करते रहेंगे, जबतक वह लोग सदाचार व सत्प्रथाओंका पालन करते रहेंगे, जबतक वह लोग अपना कार्य्य सार्वजनिक सभाओंमें विचार कर करते रहेंगे, जबतक वह लोग स्वगुरुजनोंकी सेवामें रत रहेंगे व कुलस्त्रियों तथा कुल-कुमारियोंका समुचित आदर करते रहेंगे, तबतक उस जातिके अधः-पतनकी सम्भावना नहीं है वरन् उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती रहेगी।" इसके पश्चात् भगवान् बुद्धदेव पाटिलग्राम (पटना) नादिका और वैशाली आदि स्थानोंमें अपने भिक्षु सङ्घको उपदेश देते रहे। वैशालीसे मण्डपग्राम गये और वहाँसे हस्तिग्राम, आम्रग्राम तथा जम्बूग्राममें ठहरते हुए भोगनगरमें गये तथा वहांके आनन्द चैत्य नामक विहारमें ठहरे। वहाँ बुद्धदेवने भिक्षुओंको धर्मोपदेश करते हुए कहा—मेरे पश्चात् यदि कोई विद्वान् भिक्षु तुमको कोई नवीन बात बतलावे तो तुम न उसकी निन्दा करना न अभिनन्दन करना बल्कि तुम उसे मेरे उपदेशोंसे मिलाना और विचार करना। अनुकूल होनेपर उसे ग्रहण करना तथा प्रतिकूल होनेपर उसका तिरस्कार करना।

भोग नगरसे भगवान् बुद्धदेव पावा (पड़ौना) पधारे। वहाँ उनके आगमनका समाचार सुन चुन्द नामक लुहार जो वहाँका प्रधान था, उनके पास आया और बड़ी विनयके साथ अपने घर भोजन करनेका निमन्त्रण

दिया। भगवान् बुद्धदेवने वह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। चुन्दने नाना प्रकारके भोजन बनाकर खिलाये। ऐसा भी कहा जाता है कि भोजनमें शूकरका मांस भी था। इस सम्बन्धमें मतभेद है कि शूकर मद्दव एक प्रकारका कन्द है जिसे सुअर भी पसन्द करते हैं। यह पदार्थ केवल बुद्धदेवको ही परोसा गया था। औरोंके लिये परसे जानेका निषेध कर दिया गया था, क्योंकि ऐसा अनुमान किया गया था कि इसे बुद्धदेवको छोड़कर अन्य कोई भी नहीं पचा सकेगा। बुद्धदेवके खा चुकनेपर बचे हुए पदार्थको भूमिमें गाड़ देनेके लिये कहा गया था।

बुद्धदेव पावासे कुशीनगर चले गये। यह कपिल वस्तुसे प्रायः २० कोस पूरबकी ओर था। मार्गमें उनका स्वास्थ्य जो पूर्व हीसे बिगड़ा हुआ था और भी बिगड़ गया। उनके पेटमें मरोड़ होने लगी और आँवके दस्त शुरू हो गये। राहसे हटकर बुद्धदेव एक वृक्षके किनारे चले गये। वहाँपर उन्होंने आनन्दको एक वस्त्र चौतहा करके बिछा देनेकी आज्ञा दी। वहाँ पास ही की ककुत्था नदीमें होकर प्रायः पांच सौ गाड़ियां निकल चुकीं थी, अतः जल गन्दा हो गया था। आनन्दने इसी कारण वहाँसे जल लानेमें तीन बार टालमटोल की। चौथी बार कहनेपर आनन्द जल लानेको गये तो क्या देखते हैं कि जल शुद्ध एवं निर्मल है। बुद्धदेवकी अद्‌भुत शक्तियोंको देखकर आनन्दको बड़ा आश्चर्य हुआ। आनन्दने जल लाकर बुद्धदेवको पीनेको दिया। वहाँपर आलार कालामका एक शिष्य पुक्कुस मल्लपुत्र आया और उसने अपने गुरुके चित्तकी-शान्ति तथा एकाग्रताकी बहुत प्रशंसा की। उसने कहा कि उनके आगेसे ५०० गाड़ियां निकल गईं और उनको विल्कुल खबर भी नहीं हुई। जब उसने बुद्धदेवके विषयमें यह जाना कि उनके ऊपर मेंह बरसता रहा और उनके सामने दो किसानोंपर विद्युत्पात हुआ तथापि उनके चित्तकी एकाग्रता भङ्ग न

हुई तो उसकी उनके ऊपर और भी श्रद्धा बढ़ गई। उसने दो सोनेके तारोंकी पोशाकें बुद्धदेवको भेंट कीं। एक स्वयं बुद्धदेवके लिये तथा दूसरी आनन्दके लिये। जब बुद्धदेवने यह वस्त्र धारण किये तो उनकी शरीर-द्युतिके कारण वस्त्रोंका रङ्ग फीका पड़ गया। यह देख आनन्द अत्यन्त आश्चर्य्यान्वित हुए। बुद्धदेवने कहा कि बुद्धोंके जीवनमें दो ऐसे अवसर होते हैं जब कि उनके शरीरका रङ्ग बहुत ही चमकीला हो जाता है—एक तो जब वह बुद्धत्वको प्राप्त होते हैं और एक जब कि वह निर्वाणको प्राप्त होनेके निकट होते हैं। आज रात्रिके तीसरे पहर तथागत निर्वाणको प्राप्त हो जायंगे।

वहाँसे फिर भगवान् बुद्ध कुशीनाराकी ओर चले। मार्गमें कुकुत्था नदीके किनारे एक आमका बाग था। यह बाग चुन्द ही का था। यहाँपर बुद्धदेवने आनन्दसे कहा कि कदाचित चुन्दको किसी प्रकारका पश्चात्ताप हो क्योंकि वह कदाचित ऐसी धारणा कर ले कि उसके यहाँ भोजन करनेसे उनकी (बुद्धदेव की) मृत्यु हुई, अतः वह पश्चात्ताप करनेसे रोक दिया जावे। उसको बतला दिया जावे कि जो भोजन बुद्धदेव बुद्धत्व प्राप्त करनेसे पूर्व तथा निर्वाण प्राप्त करनेसे पूर्व, करते हैं उसका बड़ा महत्व होता है; तथा खिलानेवालेको बड़ा पुण्य होता है। वहाँ थोड़ी देर विश्रामकर बुद्धदेव कुशीनाराको चले। हिरण्यवतीको पारकर नगरकी इस ओर शालका एक बन था। वहाँ उनका रोग बढ़ गया। वहाँ दो शाल वृक्षोंके नीचे उनके लिये एक चारपाई बिछा दी गई और वह उत्तरकी ओर सिरहना करके सीधी करवट लेट गये। वह भगवान् बुद्धका अन्तिम बारका लेटना था।

इस अवसरपर आनन्दने बुद्धदेवसे पूछा "भगवन्! यह आपका अन्तिम समय है। कृपया हमको उपदेश कीजिये कि स्त्रियोंके प्रति हम कैसा व्यवहार रक्खें?" बुद्धदेवने उत्तर दिया "उनकी ओर मत देखो।" आनन्दने फिर

पूछा "यदि देख लें तो क्या करें ?" उत्तर मिला "बात मत करो"। इस पर भी आनन्दने फिर पूछा "भगवन् यदि वे बोलें तो क्या करना चाहिये" उत्तर मिला "जागृत रहो।" आनन्दने फिर पूछा "आपके निर्वाणको प्राप्त होनेके पश्चात् आपके शरीरकी अन्तिम क्रिया किस प्रकार की जाय ?" उत्तर मिला "तुम अपने कार्य्यमें विघ्न मत डालना। अपना कार्य्य उत्साह-पूर्वक करते रहो। शरीरकी अन्तिम क्रिया करनेके लिये बहुतसे गृहस्थ लोग हैं।" आनन्दके दुबारा उसी प्रश्नके पूछनेपर उत्तर मिला, "जिस प्रकार राजेश्वरोंका अन्तिम संस्कार किया जाता है उसी प्रकार तथागतका भी अन्तिम संस्कार किया जाय।"

इसके उपरान्त आनन्द विहारमें जाकर खूंटी पकड़कर रोने तथा पश्चात्ताप करने लगे "हाय! बुद्धदेव जा रहे हैं और मैं अभी पूर्णताको प्राप्त नहीं हुआ।" बुद्धदेवने उन्हें अपने पास बुलाया और कहा "आनन्द बस, अब दुःख मत करो। क्या मैंने तुमसे नहीं कहा कि यह बात स्वाभाविक ही है कि प्रिय जन पृथक् हो जाते हैं ? जो वस्तु उत्पन्न हुई उसमें नाश लगा हुआ है। यह कैसे सम्भव है कि नाश न हो। तुमने मेरे प्रति प्रेम व्यवहार रक्खा है। तुम्हारा प्रेम कभी नहीं घटा। तुम अपने उद्योगमें लगे रहो और तुम भी अनास्रव अर्थात् बुराईसे शून्य हो जाओगे तथा निर्वाणको प्राप्त होओगे। संसारमें मैं पहिला बुद्ध नहीं हूँ और न मैं अन्तिम बुद्ध ही होऊंगा। जबतक मेरे शिष्यगण पवित्रताके साथ धर्मका पालन करेंगे तबतक धर्मोन्नति रहेगी। जब सत्यकी ज्योति मिथ्यात्वके मेघोंमें छिप जायगी तब एक दूसरे बुद्धका आविर्भाव होगा जो मेरे बतलाये हुए धर्मका दुबारा प्रचार करेंगे। उनका नाम मैत्रेय होगा।"

बुद्धदेवके मरणासन्न होनेका समाचार सुनकर मल्लोंको बड़ा दुःख हुआ और वह लोग बुद्धदेवके दर्शनोंके लिये आये। समयाभावके कारण बुद्धदेव

सबोंके साथ व्यक्तिशः भेंट न कर सके। एक एक परिवार एक साथ खड़ा कर दिया गया और इस प्रकार भगवान्से भेंट करा दी गई। इसके पश्चात् समुद्र नामक एक साधु आया। वह बुद्धदेवसे वार्तालाप करना चाहता था, किन्तु आनन्दने यह समझाया कि ऐसे समयमें गुरुदेवको कष्ट देना उचित नहीं है। उसको बुद्धदेवके पास आनेसे रोके रहे। जब बुद्धदेवको यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने उस साधुको अपने पास बुलवानेकी आज्ञा दी तथा उसकी शङ्काओंका समाधान कर दिया। शङ्का समाधान होनेपर वह संघमें सम्मिलित हो गया।

आनन्दको बुलाकर बुद्धदेवने कहा "मेरे चले जानेके उपरान्त तुम लोगों-मेंसे कोई यह न सोचे कि अब हमारा कोई गुरु नहीं है। संघके नियम तथा संघके सिद्धान्त ही तुम्हारे गुरु होंगे।" इसके पश्चात् बुद्धदेवने सब शिष्यों-को, जो वहाँपर उपस्थित थे, बुलाकर कहा "जिसको जो कुछ पूछना हो पूछ ले, जिससे पीछेसे किसीको यह दुःख न रहे कि बुद्धदेवके होते हुए वह अमुक बात न पूछ सका।" इस प्रकार तीन बार पूछनेपर भी किसीने कोई शङ्का उपस्थित न की। इससे बुद्धदेवको तथा आनन्दको भी बड़ा सन्तोष हुआ। बुद्धदेवने यह स्पष्ट रूपसे कह दिया था कि सङ्कोचवश कोई मौन न रहे। तदनन्तर बुद्धदेवने अपने शिष्योंको बुलाकर कहा "भाइयो! देखो, मैं तुमसे आग्रह-पूर्वक जो बातें कहता हूँ ध्यान देकर सुनो। सब पदार्थोंमें नाश लगा हुआ है। अपनी मुक्तिके लिये पूर्ण-परिश्रमके साथ यत्न करते रहना।" यही बुद्धदेवके अन्तिम शब्द थे।

इसके पश्चात् क्रमशः बुद्धदेव समाधिकी अवस्थामें प्रवेश करते हुए निर्वाण को प्राप्त हो गये। उनके शरीर-त्यागके पश्चात् मल्लोंको सम्वाद भेजा गया। वह आबाल-वृद्ध वहां उपस्थित हो गये और सात दिनोंतक नृत्य-गान द्वारा बुद्धदेवके प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट करते रहे। आठवें दिन उनका अन्तिम संस्कार

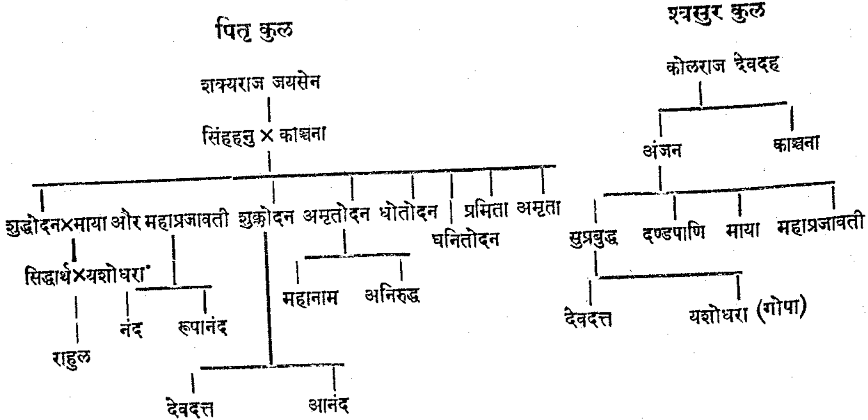
किया गया। उनकी अस्थियां आठ भागोंमें इस प्रकार वितरित कर दी गईं—

(१) मगधके राजा अज्ञातशत्रु (२) वैशालीके लिच्छवि (३) कपिल वस्तु के शाक्य (४) अल्लकप्पके बुलिय (५) रामगामके कोलिय (६) वेठ दीपके ब्राह्मण, (७) पावाके मल्ल (८) कुशीनगरके मल्ल। द्रोण नामक ब्राह्मणने अस्थियोंके विभागका झगड़ा तय किया था और स्वयं अपने लिये रिक्त कुम्भसे ही सन्तोष किया।

आठ स्तूप उन अस्थियोंपर बनवाये गये। एक उस पात्रके लिये बनवाया गया जिसमें कि वह अस्थियां रक्खी गईं थीं। पिप्पली बनके मौर्योंने सुना कि भगवानका शरीर भी बँट गया है और रिक्तकुम्भ भी चला गया है तो वहांके कोयला और भस्म ही उठा ले गये।

[सिंहली परम्पराके अनुसार बुद्धदेवका निर्वाण ई० पू० ५४४ में हुआ था। नाना ऐतिहासिक दलीलोंके आधार पर यूरोपीय पंडित इस सनको ठीक नहीं मानना चाहते। प्रधान दलील यह है कि यह समय मगधकी वंशावली की कालगणनासे मेल नहीं खाता। एकाध यूरोपियन पंडितोंने इस बातका प्रमाण पानेका दावा किया है कि सिंहलकी पुरानी परम्पराके अनुसार यह समय ई० पू० ४८३ ई० है। यूरोपियन पंडितोंके नानाविध तर्कोंका सार यह है कि यह समय ई० पू० ४७७ से ४८७ के बीचका होना चाहिये। इधर विद्वद्वर काशीप्रसाद जायसवालने खारवेलकी हाथी गुंफावाली प्रशस्तिको नये सिरेसे पढ़कर यही नतीजा निकाला है कि ५४४ ई० पू० ही बुद्ध-निर्वाणका वास्तविक काल है। स्मिथ साहबने कुछ संदेहके साथ ही जायसवाल के मतका समर्थन किया है। यद्यपि अब भी विद्वान जायसवालके मतमें सन्देह करते पाये जाते हैं पर सिंहली परम्पराके साथ इसका पूर्ण सामंजस्य होनेके कारण इस मतको सहज ही अस्वीकार नहीं किया जा सकता।]

बुद्धदेवकी वंशावली


पितृ कुल
शाक्यराज जयसेन
सिंहहनु × काञ्चना
शुद्धोदन×माया और महाप्रजावती
शुक्लोदन
अमृतोदन
धोतोदन
घनितोदन
प्रमिता
अमृता
सिद्धार्थ×यशोधरा
राहुल
नंद
रूपानंद
देवदत्त
आनंद
महानाम
अनिरुद्ध
श्वसुर कुल
कोलराज देवदह
अंजन
काञ्चना
सुप्रबुद्ध
दण्डपाणि
माया
महाप्रजावती
देवदत्त
यशोधरा (गोपा)

२

आर्य सत्य

बुद्ध भगवान्‌के संसारमें आगमनका हेतु

मग्गानं ठङ्गिको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा।
विरागो सेट्ठो धम्मानं द्विपदानं च चक्खुमा ॥ धम्मपद

अर्थात् मार्गोंमें अष्टाङ्गिक मार्ग श्रेष्ठ है तथा सत्योंमें चार आर्य सत्य। धर्मोंमें विराग श्रेष्ठ है और मनुष्योंमें ज्ञानवान् श्रेष्ठ है।

यदि पूछा जाय कि संसारमें बुद्ध महाराजका जन्म किस अर्थ हुआ तो उसका उत्तर अश्वजित्‌के शब्दोंमें इस प्रकार बतलाया जा सकता है:—

ये धम्मा हेतुप्पभवा, तेसं हेतुं तथागतो आह।
ते सं च यो निरोधो, एवंवादि महासमणो ॥

जो धर्म हेतुसे उत्पन्न हुए हैं तथागतने उनका हेतु बतलाया है और उसका निरोध भी बतलाया है।

संसारमें भगवान् बुद्धदेवका जन्म इस हेतु हुआ था कि वह संसारका वास्तविक दुःखरूप बतलावें और उसके शमनका उपाय भी बतलावें। काशीमें धर्मचक्र प्रवर्तनके आरम्भमें ही भगवान् बुद्धदेवने चार आर्य-सत्योंका उपदेश दिया था। वह आर्य सत्य इस प्रकारसे हैं:—

आर्य-सत्य

१—दुःख

२—दुःख-समुदाय अर्थात् दुःखके हेतु

३—दुख-निरोध अर्थात् दुःखका निरोध

४—दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा अर्थात् दुःख निरोधको पहुंचाने वाला मार्ग।

यह चारों आर्य-सत्य चिकित्सा शास्त्रके रोग, रोग-हेतु, आरोग्य और औषधिसे समानता रखते हैं। व्यासने योगसूत्रोंके भाष्यमें इस प्रकार लिखा है:—

यथा चिकित्सा शास्त्रं चतुर्व्यूहं रोगो रोगहेतुरारोग्यम् भैषज्यमिति, एवमिदमपि शास्त्रंचतुर्व्यूहमेव तद्यथा संसारःसंसार हेतु मोक्षो मोक्षोपाय एवेति।

इसी रूपकको बुद्धधर्ममें लगाते हुए दुःख रोग है, दुःख समुदाय रोगके हेतु हैं। दुःखका निरोध आरोग्यकी सम्भावना है और दुःख निरोध-गामिनी प्रतिपदा ओषधि है।

दुःख

दुःखकी व्याख्या इस प्रकारसे की गई है:—

"इदं खो पन भिक्खवे दुक्खं अरिय सच्चं। जातिपि दुक्खा जरापि दुक्खा व्याधिपि दुक्खा मरणंपि दुक्खं अप्पियेहि संपयोगो दुक्खो पियेहि विप्पं योगो दुक्खो, यं पिच्छंन्तं न लभति तंपि दुख, संखित्तेन पंचोपादानक्खन्धापि दुक्खं।" (धम्मचक्क प्पवत्तान सुत्त)

हे भिक्षुगण ! यह पहला आर्य-सत्य दुःख है, जन्म भी दुःख है, वृद्धावस्था भी दुःख है, मरण भी दुःख है, अप्रिय वस्तुके साथ संयोग भी दुःख है, प्रिय वस्तुके साथ वियोग भी दुःख है, इच्छित पदार्थका न मिलना भी दुःख है, संक्षेपसे राग द्वारा उत्पन्न हुए पञ्चोपादान स्कन्ध भी दुःख हैं। दुःखका अनुभव प्रायः सभी करते हैं किन्तु दुःखको जानते थोड़े ही हैं। बुद्धदेवने ऊपरकी बात बतलाकर लोगोंको दुःखका ज्ञान कराया है। दुःखके अनुभवसे दुःखकी निवृत्ति नहीं होती वरन् दुःखके कारण ज्ञानसे। दुःखका अनुभव कभी कभी दुःखकी निवृत्तिकी इच्छा उत्पन्न कर देता है किन्तु उसकी निवृत्ति तब ही होती है जब कि उसका पूर्ण ज्ञान हो जाय। दुःख भोगते हुए भी बहुतसे लोग भूल जाते हैं कि वह दुःख भोग रहे हैं। बुद्धदेवने बतलाया है कि जन्मसे लेकर मरण पर्यन्त संसार दुःख रूप ही है। जिसमें दुःख ही दुःख है, जिसकी उत्पत्ति भी दुःखमें है उसमें सुखके लेशके कारण लगे रहना, अपने सच्चे हितसे विमुख होना है। संसारमें सुख स्थापन करनेकी चाहे जितनी चेष्टा करे, आनन्द एवं विलासकी चाहे जितनी सामग्री उपस्थित करे, किन्तु दुःखसे निवृत्ति नहीं हो सकती। संसार ही दुःख है। संसारके सब पदार्थों में क्षणभंगुरता लगी हुई है। कोई भी वस्तु क्षणभर भी अपनी अवस्थामें नहीं ठहर सकती। दुःख इसी क्षणभंगुरताका एक फल है। जो वस्तु कारणसे उत्पन्न हुई है वह अवश्य क्षणभंगुर है। सत्तामात्र दुःखमयी है। बलवानसे बलवान योद्धा नाशको प्राप्त होते हैं। पत्थर और कोयलेमें भी नाश के चिन्ह वर्तमान हैं। हमारी आशाएं, अभिलाषाएं, महत्वाकांक्षाएं सब कुछ दिनों पश्चात् स्मृति क्षेत्रसे बाहर हो जायंगी। अभिलाषाओंकी पूर्ति भी दुःखमय है, क्योंकि एक चाहके पूरे होनेमें दूसरी चाह लगी हुई है। सब बात नाशको प्राप्त होती है। "तृष्णैव तरुणायते" यही तृष्णा तरुण रह कर

दुःखरूपी संसारको रचती रहती है। भगवान बुद्धदेव दुःखको सर्वव्यापी बताते हुए भी उसके कारण हमको निराशावादमें नहीं ले जाते। दुःखके कारणोंकी खोजकर हमको दुःखकी निवृत्तिका मार्ग बतलाते हैं। दुःखके कारण और उनके शमनके उपाय अगले तीन आर्य-सत्योंमें बतलाये गये हैं।

२—दुःख समुदय :—

दुःख समुदय इस प्रकार बतलाया गया है—

"इदं खो पन भिक्खवे दुक्ख समुदयं अरिय सच्चं। यायं तण्हा पोनब्भविका नंदिराग सहगता तत्र तत्रापि नन्दिनी सेय्यमीदं कामतण्हा, भवतण्हा, विभवतण्हा।"

हे भिक्षुगण! यह दुःख दूसरा आर्य्य सत्य है। वास्तवमें यह वह तृष्णा है जो पुनर्भव अर्थात् बार-बार उत्पत्तिका कारण है, जो नन्दिराग अर्थात विषयासक्तिके साथ रहती है तथा कभी यहां और कभी वहां तृप्ति खोजती है अर्थात् जो एक वस्तुकी ओर न लगी रहकर चारों ओर जाती है। यह तीन रूपसे वर्तमान रहती है।

१—कामतृष्णा- जो तृष्णा नाना प्रकारकी विषय सम्बन्धिनी कामनाएं करती हैं।

२—भवतृष्णा—जो तृष्णा संसारके भव अर्थात् सत्ताका हेतु है। संसारका बना रहना हम चाहते हैं, इसी हेतु संसार बना है।

३—विभवतृष्णा—उच्छेदकी तृष्णा। संसारको शाश्वत बनाये रखनेकी इच्छा दुःखका कारण होता है और संसारको नाश करनेकी भी इच्छा अर्थात् संसारको नाशवान् देखनेकी इच्छा दुःखका कारण होती है। जो लोग संसारको नाशवान समझते हैं वे "ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्, भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः" के सुखवादमें पड़ जाते हैं। विभवतृष्णाका अर्थ यूरोपीय

पण्डितोंने वैभव अर्थात् ऐश्वर्यकी तृष्णा लगाया है। कुछ लोगोंने आत्महत्या द्वारा संसारके नाश कर देनेकी इच्छाको विभव-तृष्णा कहा है।

तृष्णा ही पुनर्भव तथा दुःखका कारण है। केवल विषयोपभोगमें लगा रहना ही दुःखका कारण नहीं। जबतक हम संसारमें रहकर संसारके कार्य्योंको चलाये जानेका सङ्कल्प करते रहेंगे तबतक दुःखमें रहेंगे। संसार दुःखका कारण है किन्तु उस संसारके कारण हम हैं, वह हमारी कामनाओंका फल है। आगे चल करके पटिच्च समुप्पाद की व्याख्या करते हुए बतलाया जायगा कि तृष्णासे रागकी उत्पत्ति होती है और रागसे भव। तृष्णा ही हमारे मनमें राग उत्पन्न करती है और जबतक किसी वस्तुके लिये राग लगा हुआ है तब तक हम उसकी प्राप्तिके हेतु यत्नवान रहेंगे। तृष्णा-जन्य राग ही पुनर्भवका कारण होता है। बौद्ध धर्मानुकूल आत्मा कोई शाश्वत और एकरस पदार्थ नहीं है। यह संकर पदार्थ है अर्थात् पांच स्कंधों (जिनकी चर्चा आगे की जायगी) के संयोगसे उत्पन्न है। मृत्युसे आत्माका देहसे विच्छेद हो जाता है। तुरन्त ही हमारी तृष्णासे उत्पन्न हुई शक्तियां विच्छिन्न परिस्थितियोंको जोड़ बटोर कर एकत्र कर लेती हैं तथा प्रवाह फिर अन्य अन्य शरीरोंको आश्रय करके चलता रहता है। आत्म-हत्या संसार तथा दुःखका अन्त नहीं कर सकती वरन् पुनर्भवका कारण जो तृष्णा है उसका निरोध ही इस जीवनमें तथा जीवनके पश्चात् प्रवाहको बन्दकर, दुःखका अभाव कर सकता है।

३—दुःख निरोध :—

दुःख निरोधको बुद्धदेवने इस प्रकार बतलाया है :—

"इदं खो पन भिक्खवे दुक्खनिरोधं अरिय सच्चं। यो तस्सायेव तण्हाय असेस विराग निरोधो चागो पटिनिस्सग्गो मुत्ति अनालयो।"

हे भिक्षुगण ! दुःख निरोध नामका यह तीसरा आर्य-सत्य है। यह उस तृष्णासे

असेस अर्थात् पूर्ण वैराग्य है। उसका निरोध, त्याग, प्रतिसर्ग, मुक्ति और अनालय अर्थात् उसको स्थान न देना है।

जब एक बार यह ज्ञात हो गया कि दुःख तथा पुनर्भवका कारण है तब उससे कोई सम्बन्ध न रखना उससे मुक्त हो जाना ही श्रेय समझा जायगा।

जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है जबतक तृष्णा किसी रूपमें रहेगी, पुनर्भवका नाश नहीं हो सकता। इस हेतु इससे पूर्ण मुक्ति होनी चाहिये। यह बात केवल जाननेकी नहीं। ज्ञानमात्रसे काम नहीं चल सकता। उसी ज्ञानके साथ तृष्णाका भी हनन करना आवश्यक है। ज्ञानके क्षेत्रमें अविद्या एवं संकल्पके क्षेत्रमें तृष्णाका नाश किये बिना दुःखकी निवृत्ति नहीं हो सकती। तृष्णाका नाश सहजमें नहीं प्राप्त हो सकता। इसलिये मार्ग अथवा साधनाकी आवश्यकता है। यह मार्ग आर्य्य अष्टाङ्गिक मार्ग है। यह चौथा सत्य आगे बतलाया जाता है।

४—दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा :—

दुःखके निरोधतक ले जानेवाले मार्गको बुद्धदेवने इस प्रकार बतलाया है :—

"इदं खो पन भिक्खवे दुक्खनिरोध-गामिनी पटिपदा अरिय सच्चं। अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो। सेय्यपीदं सम्मादिट्ठि, सम्मासंकप्पो, सम्मावाचा, सम्मा कम्मंतो, सम्मा आजीवो, सम्मा वायामो, सम्मासति, सम्मा समाधि।"

हे भिक्षुगण यह दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा नामक चौथा सत्य है। इसी आर्य्य सत्यको अष्टाङ्गिक मार्ग कहते हैं। यह आठ अङ्ग यह हैं :—

१—सम्यक् दृष्टि, २-सम्यक् सङ्कल्प ३-सम्यक् वाचा ४-सम्यक् कर्मान्त ५-सम्यक् आजीविका ६-सम्यक् व्यायाम ७-सम्यक् स्मृति ८-सम्यक् समाधि।

सूत्र-विभङ्गमें इनकी इस प्रकार व्याख्या की गई है :—

आर्य्य सत्य और आष्टांगिक मार्गका सम्बन्ध

सम्यक् दृष्टिका अर्थ इन चारों आर्य्य-सत्योंके जाननेका है। इन सत्योंसे लाभ उठाने एवं उनको जीवनका लक्ष्य बनानेका सङ्कल्प सम्यक् सङ्कल्प है। यह सङ्कल्प दो प्रकारसे कार्य्यमें परिणत हो सकता है। एक तो संसारसे त्याग द्वारा और दूसरा विनय पूर्ण आचरण द्वारा। सम्यक् वाचासे मिथ्या न बोलना, किसीकी निन्दा न करना, किसीसे दुर्वचन न बोलना इत्यादि। सम्यक् कर्मान्त हिंसा, चोरी, व्यभिचार, इत्यादिसे बचनेको कहते हैं। सम्यक् आजीविका ईमानदारीकी आजीविका जो हिंसादि दोषोंसे दूषित न हो। सम्यक् व्यायाम पुण्य कार्य्योंको करने एवं पापसे बचनेके हेतु सदा यत्नवान् रहनेको कहते हैं। सम्यक् स्मृति, शरीर, मन तथा उसके भावोंको यथा रीतिसे जाननेको कहते हैं। सम्यक् समाधि वह ध्यान है जो पञ्च स्कन्धोंसे छुड़ा दे।

इन सबमें जो सम्यक् अर्थात् पूर्ण विशेषण लगा हुआ है, उस सम्यक्ता-की क्या कसौटी है? दो अन्तोंके मध्यमें रहना यही सम्यक्ता है। बस इस अष्टाङ्गिक मार्गका सूक्ष्म रूप मध्यमा प्रतिपदा है। इस मध्यमा प्रतिपदाको बुद्धदेवने इस प्रकार बतलाया है :—

"द्वे भिक्खवे अन्ता पब्बजितेन न सेवितब्बा। कतमे द्वे? यो चायं कामेसु कामसुखल्लिकानुयोगो हीनो गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थ-संहितो। यो चायं अत्त किलमथानुयोगो दुक्खो अनरियो अनत्थसंहितो, एते खो भिक्खवे उभे अन्ते अनुपगम्य मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभि संबुद्धा चक्खुकरणी, जाणकरणी उपसमाय अभिञाय सम्बोधाय निब्बानं संवत्तति।"

हे भिक्षुगण! परिव्राजक अर्थात् जिसने संसारको त्याग दिया है उसे दो अन्तोंका सेवन नहीं करना चाहिये। वह दो कौन है? वह एक तो काम्य पदार्थोंमें अर्थात् विषय भोगमें सुखकी इच्छासे लगा रहना। यह अत्यन्त हीन,

ग्राम्य, अध्यात्मिकतासे पृथक् करनेवाला, अनार्य तथा लाभरहित है। दूसरा अन्त शरीरको क्लेश देना, यह भी दुःखमय अनार्य एवं अलाभदायक है। हे भिक्षुगण, इन दोनों अन्तोंको छोड़कर मैंने मध्यमा प्रतिपदा नामक बीचकी राहका ज्ञान प्राप्त किया है। यह मध्यमा प्रतिपदा चक्षु देनेवाली है अर्थात् नेत्रोन्मीलन कर देती है, बुद्धिको देनेवाली है, चित्तको शान्ति प्रदान करती है, पूर्ण ज्ञान, सम्बोध तथा निर्वाणको प्राप्त कराती है।

आगे चलकर बुद्धदेवने इसका विस्तृत रूप अष्टाङ्गिक मार्गमें बतलाया है। अष्टाङ्गिक मार्ग ही बुद्धधर्मका मुख्य ध्येय है। जो कोई अष्टाङ्गिक मार्गपर चलता है वही सचा बौद्ध है। जो बौद्ध कुलमें उत्पन्न हुआ भी अष्टाङ्गिक मार्गपर नहीं चलता वह बौद्ध नहीं। बुद्धदेवने इस अष्टाङ्गिक मार्गको भारी प्रधानता दी है। जब उनकी मृत्युका समय उपस्थित हुआ था तब उन्होंने सुभद्रसे कहा था कि जिस धर्ममें अष्टाङ्गिक मार्ग है वहीं सच्चे धार्मिक पुरुष मिल सकते हैं।

संक्षेपतः बुद्धदेवने चारों आर्य्य-सत्यों द्वारा यह बतलाया है कि संसारमें दुःख है। वह दुःख ऐसा नहीं है कि जिसकी हम उपेक्षा कर सकें। यह सत्ता एवं जीवनका मुख्य स्वरूप है, किन्तु वह दुःख ऐसा भी नहीं जो अजेय है। ऊपरी यत्नों द्वारा हम उस दुःखपर विजय लाभ नहीं कर सकते वरन् यदि हम उसके कारणोंको जान लें तो, उन कारणोंके नाश होनेपर "कारणाभावे कार्य-स्याभावः" वाले नियमानुसार हम दुःखका नाश कर सकते हैं। भगवान् बुद्धदेवका संसारमें आनेका यह कारण क्या है? कामना। इस कामनाके पूर्ण-रीत्या नाश होनेसे दुःखका नाश हो सकता है। इस कामनाके नाशके साधनका मार्ग क्या है? वह अष्टाङ्गिक मार्ग है। कामना संसारकी किस प्रकारसे कारण है? वह संसारकी कार्य्य-कारण श्रृङ्खलामें क्या स्थान पाती है? यह बातें

"प्रतीतिसमुत्पाद" की व्याख्या करते हुए अगले अध्यायमें बतलायी जायँगी।

यह आष्टाङ्गिक मार्ग इस प्रकार बतलाया गया है :—

अष्टांगिक मार्गकी व्याख्या

१—सम्मादिट्ठि	...	सम्यक् दृष्टि
२—सम्मासंकप्प	...	„ सङ्कल्प
३—सम्मावाचा	...	„ वाक्य
४—सम्माकम्मान्त	...	„ कर्मान्त
५—सम्माआजीव	...	„ जीविका
६—सम्मावायाम	...	„ व्यायाम
७—सम्मासति	...	„ स्मृति
८—सम्मासमाधि	...	„ समाधि

स्वयं बुद्धदेवने इस अष्टांगिक मार्गको अपने धर्मका मुख्य अङ्ग माना है। मध्यमा प्रतिपदा आठों अङ्गोंमें लगती है। सम्यक् दृष्टिके लिये दो अन्त कौन से हैं? एक शाश्वत दृष्टि और दूसरी उच्छेद दृष्टि। जो लोग आत्माको मानते हैं वह **शाश्वत दृष्टि** रखते हैं और जो लोग यह मानते हैं कि शरीरान्तके साथ आत्माका भी अन्त हो जाता है वह लोग **उच्छेद दृष्टि** रखते हैं। सम्यक् दृष्टि इन दोनोंके बीचकी दृष्टि है। संसार दुःख रूप है; किन्तु वह दुःख शाश्वत रहकर अजेय नहीं हैं, किन्तु यदि कोई आत्महत्या द्वारा दुःखका अन्त करना चाहे तो वह मूर्ख तथा कायर है। दुःखका अन्त दुःखके मूलको नाश करनेसे ही हो सकता है। जो इस दृष्टिके आधारपर सङ्कल्प किये जायँगे वही सङ्कल्प सच्चे होंगे एवं यही हाल कर्म्मोंका है। न तो मनुष्यको सुख विलासमें ही जीवन व्यतीत करना चाहिये और न इसके विपरीत शरीरको नष्ट करनेका उद्योग करना चाहिये। मध्यमा प्रतिपदामें

दोनों अन्तोंकी बुराई छूट जाती है और उनके सार मूल गुण आ जाते हैं। अरस्तूने भी मध्य पथ (Middle path) को माना है। उसका कथन अगले उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगा। शौर्य्य दो दूषित अन्तोंके बीचकी अवस्था है। एक ओर दुस्साहस है जो मनुष्यको अकारण जीवन नष्ट करनेके हेतु उद्यत कर देता है तथा एक ओर कायरता है जो मनुष्यको उसके शक्य कार्योंके सम्पादन करनेसे रोके रहती है। इस प्रकार मध्यमा प्रतिपदा हमारे जीवनके सब ही कार्मोंको कसौटी बन सकती है।

३

अष्टाङ्गिक मार्ग

मग्गानं ठङ्गिको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा।
विरागो सेट्ठो धम्मानं दिपदानं च चक्खुमा ॥—धम्मपद

निर्वाणगामी जितने मार्ग हैं उनमें सम्यक् दृष्टि आदि अष्टाङ्ग मार्ग श्रेष्ठ है। लोकमें यावत् सत्य धर्म हैं उनमें चार आर्य सत्य श्रेष्ठ हैं, धर्मोंमें वैराग्य श्रेष्ठ है और मनुष्योंमें सर्वज्ञानी बुद्ध भगवान् ही श्रेष्ठ हैं।

चार आर्य सत्योंमेंसे पहले तीन सत्य ज्ञानसे सम्बन्ध रखते हैं और चौथा कर्मसे। इस ज्ञानके अनुकूल अष्टाङ्गिक मार्ग पर चलना ही सत्कर्तव्य है। अष्टाङ्गिक मार्ग पर चलना दुःखके नाशका उपाय है।

१ सम्मादिट्ठि

प्रत्येक सत्कार्यके लिये ज्ञानकी भित्ति होती है। जैसा हमारा ज्ञान होता है उसीके अनुकूल हमारा कर्तव्य होता है। जबतक मनुष्यका कर्तव्य ही ठीक नहीं तबतक उसकी प्रवृत्ति ठीक नहीं हो सकती। संसारके स्थायी व अस्थायीके माननेसे हमारा दृष्टिकोण बदल जाता है। संसारके सम्बन्धमें

हमारा ज्ञान यथार्थ होना चाहिए। ऊपर बतलाया जा चुका है कि ज्ञानकी यथार्थता निश्चित करनेमें मध्यमा प्रतिपदाका सहारा लेना पड़ता है। हमको दोनों अन्तोंको छोड़कर बीचके मार्गका अनुसरण करना पड़ता है। ज्ञान ठीक होनेसे दुःखका नाश हो जाता है।

सब्बे धम्मा अनत्तानि यदा पञ्जाय पस्सति।
अथ निब्बिदन्ति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया॥

सब पंच स्कंध आदि धर्म अनात्म हैं, ऐसा ज्ञान जब भासता है तब दुःखमय संसारसे आशा निवृत्त हो जाती है। यही मार्ग परिशुद्ध मार्ग निर्वाणके लिये है। सब पदार्थोंको अनात्म समझना ही सच्चा ज्ञान है।

दुःख, दुःख समुदय, दुःखनिरोध-गामिनी प्रतिपदाका ज्ञान ही सम्यक् दृष्टि है।

जब तक हम आर्य सत्योंको न जानेंगे और जबतक हम संसारको दुःख-रूप न मानेंगे तबतक हमारे कर्तव्यका लक्ष्य उससे भागनेकी ओर न होगा। सच्चे ज्ञानके बाद ही सच्चा संकल्प आता है।

जब हमको ज्ञान हो जाता है कि हम रोगग्रस्त हैं तब हम उससे मुक्त होनेका संकल्प करते हैं। जबतक मोहनिद्रामें पड़े रहकर हम अपनी रुग्णा-वस्था पर विचार नहीं करते तबतक हमारे उद्धारका कोई उपाय नहीं है। संकल्पसे क्रिया होती है।

'यत्कर्तुं भवति तत्कर्म कुरुते'

इसके लिये सत्संकल्पकी आवश्यकता है।

२ सम्मासंकप्प

सम्यक् दृष्टि हो जाने पर सम्यक् संकल्प होता है। वह संकल्प त्याग, अद्वेष और अहिंसाका होता है। "दुःख समुदय" के ज्ञानसे हमको निश्चय हो

जाता है कि बिना त्यागके—विशेषकर तृष्णाके त्यागके—हमारा भवचक्रसे छुटकारा नहीं हो सकता। जब हमारा सबके साथ अद्वेष, अहिंसा और मैत्री का भाव रहेगा तब ही हमारी तृष्णाका क्षय हो सकता है। हमको अपना ऐसा भाव बना लेना चाहिए जिससे किसीके प्रति हिंसा और द्वेषका व्यवहार न हो। सत्यसंकल्प, सत्यवाचा तथा सत्क्रियामें परिणत हो जाते हैं।

३ सम्मावाचा

सम्मावाचासे सब प्रकारके झूठ, दूसरेकी निन्दा, अपमान, चुगली, झूठी गवाही इत्यादिसे बचना समझना चाहिये। भोजन, वस्त्र, सुगन्ध, स्त्रियां, भविष्यकी बातें कहना, भूत प्रेतसे सम्बन्ध रखनेवाली बातचीत वर्जित है। निरर्थक वार्तालाप भी दूषित समझा जाता है। जो कुछ बात कही जाय वह सत्य हो और आदर, प्रेम, नम्रताके भावोंसे गर्भित होनी चाहिए। अपराधीके साथ दण्ड देते समय भी आदरका व्यवहार हो सकता है। उसमें व्यक्तिगत वैरभाव अथवा रोषकी गन्ध न आनी चाहिये। सम्यक् वार्तालाप मनुष्योंमें परस्पर प्रेम अथवा वैरभाव उत्पन्न करनेमें सहायक होता है। मनुष्यको बहुत सोच-समझ कर वार्तालाप करना चाहिए। ऐसी कोई बात न कही जाये जिससे दूसरोंका जी दुखे। बात सारगर्भित होनी चाहिये। निरर्थक बात करना निर्मल ही नहीं वरन् समयका दुरुपयोग है। सार्थक बात जिससे शान्ति उत्पन्न हो बड़ा मूल्य रखती है।

'सहस्समपि चे वाचा अनत्थपदसंहिता।
एकं अत्थपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥'

अर्थात निरर्थक सहस्रों पद समूहोंसे एक अर्थ वाला सारगर्भित पद श्रेष्ठ है, जिसके सुननेसे शान्ति हो।

४ सम्माकम्मन्त

बौद्ध धर्ममें जिसमेंकी मनुष्यकी सद्गति और दुर्गति इसीपर निर्भर रहती है, कर्मकी विशेष प्रधानता है। बौद्ध धर्ममें हिन्दू धर्मकी भांति आवागमन माना गया है। लोग अपने कर्मोंके अनुकूल बुरा या भला जन्म लेते हैं। यद्यपि बौद्ध धर्ममें आत्माको शाश्वत नहीं माना है तथापि बौद्ध धर्मानुगामी एक प्रकारका कर्म सिद्धान्त मानते हैं। पुनर्जन्ममें वही व्यक्ति जन्म नहीं लेता है किन्तु उस व्यक्तिके संस्कार और अन्तिम विचार एक नया व्यक्ति उत्पन्न कर लेते हैं *। स्वयं बुद्धदेवने अपने बुद्धत्व प्राप्त करनेसे पूर्व

* 'मिलिंद प्रश्न' नामक ग्रन्थमें भदन्त नागसेनने यवनराज मिलिंदको यह तत्त्व अत्यन्त सरल भाषामें इस प्रकार समझाया था—

"राजाने कहा—भदन्त नागसेन जो उत्पन्न होता है, वह वही है या दूसरा ?"

'स्थविरने कहा—"वह भी नहीं दूसरा भी नहीं।"

'उपमा दीजिये।'

'महाराज जब आप शिशु, नवीन, शुद्ध और उत्तानशायी थे, बड़े होकर भी क्या वही हैं ?'

'नहीं भदन्त, वह शिशु, नवीन, शुद्ध और उत्तानशायी और था, बड़ा होकर मैं कुछ और हो गया हूं।'

'महाराज यदि ऐसा है तो माता भी कोई नहीं, पिता भी कोई नहीं, आचार्य भी कोई नहीं हो सकेगा। शिल्पी भी कोई नहीं, बुद्धिमान भी कोई नहीं हो सकेगा। तो फिर क्या महाराज कललकी माता और है, अ्रणकी दूसरी अवस्था अर्बुदकी माता और है, तृतीयावस्थाकी माता और है, चतुर्थावस्थाकी माता और है, छोटे शिशुकी माता और है, बड़ेकी माता और है ? सीखता और कोई है, सीखकर शिक्षित और कोई होता है ? अन्य व्यक्ति पाप करता है और हाथ पैर और किसीके काटे जाते हैं ?"

अनेकों बार जन्म लिया। उन जन्मोंका हाल जातक-कथाओंमें मिलता है। साधारण लोगोंकी दृष्टिसे अच्छा कर्म स्वर्गकी प्राप्ति अथवा नरकसे बचनेके हेतु किया जाता है। बौद्ध धर्ममें सत्कर्मोंकी संख्या कई प्रकारसे गिनाई

'नहीं भदन्त, ऐसा तो नहीं है। अच्छा, आपसे पूछा जाता तो आप क्या जवाब देते ?

'मै कहूंगा,—मैं ही शिशु था, नवीन था, शुद्ध था, उत्तानशायी था, और मैं ही अब बड़ा हो गया हूं। इस शरीरको आश्रय करके ही वह सब (अवस्थायें) एकत्र संगृहीत हुई है।'

'उपमा देकर समझाइये।'

'जैसे, महाराज यदि कोई आदमी दिया जलावे तो वह दिया सारी रात जलेगा ?

'हां भदन्त, सारी रात जलेगा।'

'अच्छा महाराज, इस प्रदीपकी जो शिखा पहले पहरमें है, वही क्या दूसरे पहरमें है ?'

'नहीं भदन्त।'

'मध्यम पहर की शिखा ही क्या अन्तिम पहरमें है ?

'ना भदन्त।'

'तो क्या महाराज, प्रथम पहरमें दूसरा प्रदीप था, मध्यममें दूसरा और अन्तिममें तीसरा ?'

'ना भदन्त, उस एक प्रदीपको आश्रय करके ही वह सारी रात जलता रहा।'

'इसी प्रकार महाराज धर्मसन्तति अर्थात् वस्तु-धर्म-प्रवाह (वस्तुमें) सम्मिलित होता है। अन्य उत्पन्न होता है, अन्य निरुद्ध या ध्वंस होता है (जो ध्वंस होता है वही उत्पन्न नहीं होता,) किन्तु उस वस्तुका धर्म-प्रवाह उत्पद्यमान वस्तुमें अपूर्वापरकी भांति (मानो एक ही साथ) सम्मि-

है। उनमें से पञ्चशील मुख्य हैं। शील कहते हैं "सब्ब पापस्स अकरणं" सब पापोंके न करनेको। पञ्चशीलमें जिन पापोंका त्याग किया जाता है इस प्रकारसे हैं:—

यो पाणमतिपातेति मुसावादञ्च भासति।
लोके अदिन्नं आदियति परदारञ्च गच्छति॥
सुरामेरयपानञ्च यो नरो अनुयुञ्जति।
इधेव पेसो लोकस्मिं मूलं खनति अत्तनो॥

जो प्राणको लेता है अर्थात् हिंसा करता है, तथा मिथ्याभाषण करता है और जो लोकमें बिना दिये हुए कुछ लेता है, [इसमें केवल चोरी ही नहीं आ

लित होता है। इसके लिये चरम-विज्ञान यही संगृहीत होता है कि (जो उत्पन्न होता है) वह वह भी नहीं है, दूसरा भी नहीं है।'

'और उपमा दीजिये।"

'जैसे महाराज, दुहा हुआ दूध समय पाकर दहीके रूपमें परिवर्तित होता है, फिर दहीसे मक्खन और उससे घीमें परिवर्तित होता है। अब यदि कोई कहे कि जो दूध है वही दही है, वही मक्खन है, वही घी है, तो क्या वह ठीक कहेगा?'

'ना भदन्त, दूधको आश्रय करके ये सब बने हैं।'

'इसी प्रकार महाराज, वस्तुधर्मप्रवाह वस्तुमें सम्मिलित होता है। दूसरा उत्पन्न होता है, दूसरा विरुद्ध। (जो निरुद्ध होता है, ठीक वही उत्पन्न नहीं होता। किन्तु निरुध्यमान वस्तुका धर्मप्रवाह उत्पन्न होनेवाली वस्तुमें) अपूर्वापरकी भांति (मानो एक साथ) सम्मिलित होता है। इसलिये चरम-विज्ञानमें यही संगृहीत होता है कि (जो उत्पन्न होता है) वह भी नहीं है, दूसरा भी नहीं है।"

'भदन्त, आप चतुर हैं।'

[म० म० पं० विधुशेखर भट्टाचार्यके अनुवादके आधारपर—सम्पादक]

जाती वरन् सब प्रकारका मुफ्तका माल लेना भी आ जाता है,] जो परस्त्री गमन तथा सुरापान करता है वह इसी लोकमें अपनी जड़ खोद डालता है। सब कर्मोंका मूल अपने पर विजय पाना है।

अत्ताहि अत्तनो नाथो कोहि नाथो परो सिया।

अत्तनाव सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं॥

आत्मा ही आत्माका नाथ है। आत्मासे भिन्न और कौन नाथ हो सकता है।? आत्माको जीत लेनेसे ही दुर्लभ नाथको प्राप्त करता है। अर्थात् परमपद निर्वाणको प्राप्त होता है।

सम्मा आजीव

कर्म जो बतलाये गये हैं वह साधारण मनुष्यके लिये बतलाये गये थे। प्रत्येक मनुष्यको कुछ कार्य मनुष्यकी ही हैसियतसे करने पड़ते हैं। वह कर्म भी ऐसे न होने चाहिये जो बौद्धधर्मके सिद्धान्तोंके प्रतिकूल हों, अर्थात् ऐसी आजीविका नहीं करनी चाहिये जिसमें हिंसा करनी पड़े, अथवा चोरी, व्यभिचार या झूठ बोलना पड़े। मनुष्यकी आजीविका शुद्ध होनी चाहिये। युद्धके हथियार बनाना, गोली बारूद बनाना, शिकार खेलना, गोश्त बेचना, ऐसे कार्य जिनमें बेईमानी अधिक हो, निषिद्ध समझे जाते हैं। हाथ देखना, ज्योतिष, भविष्य कहना, इन सब कामोंमें थोड़ी बहुत धोखेपनकी मात्रा रहती है, इसलिये बौद्ध इन कर्मोंको अच्छा नहीं समझते।

महाराज अशोकने बौद्धधर्म स्वीकार करनेके पश्चात् शिकार खेलना छोड़ दिया था। उन्होंने पशुवधके सम्बन्धमें नियम बना दिये थे, अशोकके आदेशोंमें से जाना जाता है कि जीववध सम्बन्धी कैसी रोक-टोक थी।

सम्मा वायाम

व्यायामसे यहां पर कसरतसे अभिप्राय नहीं और न इसका अर्थ है नाना

प्रकारके आसनादिकों द्वारा शरीरको कष्ट देना, वरन् व्यायामका अर्थ है उद्योग। सच्चे उद्योगोंमें चार बातें आती हैं:—

(१) अवगुणोंके नाशका उद्योग करना।

(२) नये अवगुणोंके संग्रहसे बचना।

(३) गुणोंको प्राप्त करना।

(४) गुणोंकी वृद्धि करना।

सम्मा सति

सति स्मृतिको कहते हैं। स्मृतिसे स्मरण और बारबार विचारका अर्थ है। मन सदा शुद्ध होना चाहिये। जब मन शुद्ध होगा तब क्रियाएँ निर्दोष होंगी। मन ही सब बातोंमें आगे चलता है। कर्म तीन प्रकारसे होता है (१) मनसा (२) वाचा (३) कर्मणा।

'मनसा' को प्रथम स्थान दिया है क्योंकि शेष दोनोंमें भी 'मनसा' की बात मिली रहती है। मनकी श्रेष्ठताके विषयमें 'धम्मपद' में इस प्रकार लिखा है—

"मनो पुब्बङ्गमा धम्मा, मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं व बहतो पदं॥"

अर्थात् मन मनुष्यका धर्मोका पूर्वगामी है, अर्थात् मनुष्यके धर्मका विचार मनसे बनता है। मन श्रेष्ठ है। सब प्राणी मनके बने हुए हैं। बुरे (अशुद्ध) मनसे जो कुछ कहा जाता है अथवा किया जाता है उसका फल दुःख—उसके पीछे ऐसे ही चलता है जैसे कि गाड़ीमें जोते हुए जानवरके पीछे पहिया। इसलिये मनकी शुद्धि परमावश्यक है :—

"मनः पूतं समाचरेत्।"

सम्मा समाधि

समाधि कर्त्तव्य पथमें अन्तिम श्रेणी है। शीलके अनुशीलनसे हमारी मानसिक क्रियायें नियमित हो जाती हैं। शील समाधिकी तैयारी है। शीलके साथ भोजन, वसन, आसनादि सम्बन्धी नियम आवश्यक हैं। इन नियमोंका पालन करनेसे शरीर और मन समाधिके उपयुक्त हो जाता है। समाधिको 'कुशलचित्तेकाग्गता' कहा है। अर्थात् सत्कर्मके लिये जो चित्तकी एकाग्रता की जाती है वह समाधि है। समाधि दो प्रकारकी होती है। (१) उपचार समाधि, (२) अप्पणा समाधि (ध्यान समाधि), पूर्ण समाधि प्राप्त करनेके लिये बुद्धके गुणादिको स्मरण करते हुए चित्तको ध्यानस्थ करनेको उपचार समाधिमें गिने जाते हैं और समाधिको वास्तविक रूपसे प्राप्त कर लेनेको अप्पणा (प्राप्त) समाधि कहते हैं। सबसे पहले समाधिकी इच्छा रखनेवालेको भोजनादिमें आसक्तिको वर्जन कर उससे वैराग्य करनेका उद्योग करना पड़ता है। भोजनमें जरासी भी रुचि न रखनी चाहिये। शरीरके नाशसे क्लेश तथा दुःखका नाश नहीं होता वरन् सत्यके ज्ञान और वासनाके क्षयसे होता है। वासनाके क्षयके लिये थोड़ा अभ्यास करना चाहिए उस अभ्यासके लिये शरीर धारण करना परमावश्यक है। जबतक दुःखका नाश न हो तबतक शरीर धारण करनेके निमित्त भोजन ग्रहण करना चाहिए। बौद्ध ग्रन्थोंमें कहा है कि जिस प्रकार कोई दुस्तर अरण्यको पार जानेके हेतु भोजनोंके अभावमें अपने पुत्रके मांसको खाता है उसी प्रकार दुःखके पार करनेके निमित्त शरीर रक्षार्थ मनुष्य भोजन करे।

"सो कन्तार नित्थरणत्थिको निज पुत्रमंसं विगता मेदा
आहारम् आहारेति यावद् एव दुक्खस्स निहरणत्थाय।"

इस प्रकार भोजनसे विराग उत्पन्न कर लेनेके पश्चात् निर्वाण पथके पथिकको शरीरकी अनित्यता पर विचार करना पड़ता है। उसको यह ध्यानमें रखना चाहिए कि हमारा शरीर चार धातुओं (अर्थात् क्षिति, अप्, तेज, वायु —बुद्ध पञ्चभूत नहीं मानते) से बना हुआ है और ये कसाईकी दूकानमें रखे हुए मांसकी भांति है। इसको 'धातुववत्थान' भावना कहते हैं। इसके पश्चात् उसको बुद्धदेवके संघ और धर्मके सद्गुणों और विशेषताओं पर विचार करना पड़ता है। इस प्रकार उपचार समाधिमें कुशलता प्राप्त कर वह 'झान' समाधिकी ओर जाता है। इसमें सर्व प्रथम उसको शरीरकी अनित्यता और उसके प्रति घृणाका भाव दृढ़ करनेके हेतु श्मशान भूमिमें रहनेका उपदेश दिया जाता है। वहां पर शवके दाहमें जो मनुष्य शरीरकी भयानक गति होती है उसे देखनेसे जुगुप्साका भाव बढ़ जाता है इसको 'असुभ कम्मट्ठान' कहते हैं अर्थात् शरीरकी अपवित्रताको देखनेका उद्योग। इसीके साथ उसके शरीरकी बनावट और उनके आन्तरिक विकारों एवम् परिवर्तनोंके ऊपर विचार करना चाहिये। यह शरीरका विराग उसको ध्यानकी प्रथम अवस्थामें ले जावेगा। इसको 'काय-गता सति' कहते है। इसके अनन्तर मुमुक्षुको एकान्त स्थानमें 'अस्सास तथा पस्सास' अर्थात् श्वासके भीतर तथा बाहर जानेके ऊपर ध्यान देनेको कहा जाता है। इसे 'आनापानसत्ति' कहते हैं, यह चित्तकी एकाग्रतामें सहायक होती है। इसके उपरान्त वह ब्रह्म-बिहारमें आता है। मेत्ता (विश्वमैत्री) करुणा (विश्वदया) मुदिता (प्रसन्नता तथा आनन्दका भाव) अपने लिये और सबके लिये उपेक्खा (शत्रु एवं मित्रके प्रति उदासीनताका भाव) इन चारों बातों पर विचार एवं मनन करना ब्रह्म-बिहार कहलाता है। इसके लिये निर्वाणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अपना भाव ऐसा बना लेना चाहिये कि वह समस्त संसारका मित्र है। संसारके दुःख तथा क्लेशोंका निवारण करना उसका

कर्तव्य है। उसको सबकी अर्थात् मित्र शत्रु और उदासीन पुरुषोंके हितकी कामनामें अपना सारा जीवन व्यतीत करना चाहिये। उसको यह सोचना चाहिये कि उसके और अन्य पुरुषोंके सुख एवं आनन्दमें कोई अन्तर नहीं है। संक्षेपमें उसे "आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पश्यति" के उपदेशका अनुसरण करना चाहिये।

सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बेसं जीवितं पियं।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये॥

अर्थात्—सब लोग दण्डसे डरते हैं। सब लोगोंको जान प्यारी है। अपनी आत्माके सादृश्यसे दूसरेको न मारना चाहिए न किसी प्रकारका घात पहुंचाना चाहिए। उसके लिये हर प्रकारका क्रोध, हिंसा प्रतीकारके भावोंका दमन करना वाञ्छनीय है। संसारकी अनित्यता पर विचार करते हुए उसको यह सोचना चाहिये कि यह सब घात-प्रतिघात स्कन्धोंका कार्य्य है। यदि यह स्कन्ध पृथक् हो जायं तो न हिंसा न अपमान और न प्रतिकारका भाव रह जाय। इस प्रकारके विचारोंसे सबके प्रति करुणा, मैत्री, उपेक्षा और मुदिताका भाव उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि मैत्री और उपेक्षामें थोड़ा अन्तर है तथापि जब हमारी मैत्री सबके प्रति होती है तो किसी विशेष व्यक्तिके प्रति राग-द्वेष नहीं रह जाता। व्यक्तिगत मैत्री और उपेक्षामें विरोध है, किन्तु विश्व-मैत्री और विश्व-उपेक्षामें कोई विरोध नहीं। ब्रह्म-विहारके पश्चात् चार ध्यान आते हैं।

(१) पहले ध्यानमें मनुष्य अपनी दृष्टिको किसी विशेष वस्तुपर केन्द्रस्थ करता है। इस एकाग्रतासे अविज्जा (कामवासनाओं तथा इच्छाओंमें आनन्द लेना) व्यापादो (हिंसा) थीनमिद्धम् (देह और मनका आलस्य) और उद्धच्चकुकुच्चम् (औधत्य एवम् अशान्ति) और विचिकिच्छा (सन्देह) का नाश

हो जाता है। इस ध्यानमें वितक्क (तर्क) विचार, पीति, (प्रीति) सुख तथा एकाग्रता पाँच बातें होती हैं।

(२) दूसरे ध्यानमें वितक्क और विचारका नाश हो जाता है और मनकी स्थिति निश्चल हो जाती है। इस स्थितिको 'एकोदिभाव' कहते हैं। पीति, सुख, एवम् एकाग्रता बनी रहती है।

(३) तीसरे ध्यानमें द्वितीय ध्यानकी प्रीतिके स्थानमें उपेक्षा हो जाती है। इस अवस्थामें साधक वस्तुओंको देखता है। किन्तु उनसे प्रसन्नता या अप्रसन्नताका भाव नहीं उत्पन्न होता। उसके सब आसव क्षीण हो जाते हैं। इसमें सुखका भाव एवम् एकाग्रताका भाव बना रहता है। तथा कभी-कभी मन प्रीतिकी ओर झुक जाता है। इस ध्यानका विषय भी वही पहलेका विषय बना रहता है।

(४) चौथे ध्यानमें सुख दुःखके भाव चले जाते हैं। उपेक्खा और एकाग्रता रहती है। इस ध्यानके साधन कर लेने पर मनका नाश हो जाता है और साधक अर्हित पदको प्राप्त होता है। उस समय नवीन स्कन्ध नहीं बनते हैं। दुःखका नाश हो जाता है तथा मृत्युके उपरान्त वह निर्वाणको प्राप्त होता है।

निर्वाण पथमें चार श्रेणियाँ मानी गई हैं।

पहली श्रेणीके वह लोग होते हैं जो शील तथा सत्कर्मोंके पालनसे इस कार्यमें प्रवेश करते हैं। वह 'सोतापन्न' अर्थात् धारमें प्रवेश किये हुए कहलाते हैं।

(२) दूसरी श्रेणी वाले प्रथमको पारकर दूसरी वाले 'सकदागामी' कहलाते हैं। उनके सब संस्कार नाश हो जाते हैं; किन्तु एक बार उनको जन्म लेनेकी आवश्यकता रहती है।

(३) तीसरी श्रेणी वाले 'अनागामी' कहलाते हैं। उन्हें फिरसे जन्म लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती। यह जीवन-मुक्तकी भांति हो जाते हैं।

(४) चौथी श्रेणीके लोग 'अर्हत्' कहलाते हैं और ये पूर्ण निर्वाणके अधिकारी हो जाते हैं। 'अर्हत्' का अर्थ पूजाके योग्य है। शीलका अनुशीलन प्रथम दो श्रेणियोंके पार करनेमें सहायक होता है। अन्तिम दो समाधि और ध्यान द्वारा प्राप्त होती हैं। इस प्रकार अष्टाङ्गिक मार्गका अनुसरण कर लोग काम-वासनाका क्षय कर निर्वाणके परम पदको प्राप्त होते हैं। अर्हत् लोग दुःखसे परे हो जाते हैं—

गतद्धिनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधि।
सब्बगन्थपहीनस्स परिळाहो न विज्जति॥

धम्मपद

उत्पत्ति विनाशरूपी संसार-यात्रासे निवृत्त हुआ शोक-संताप-रहित भव-बन्धन आशा धर्मसे विमुक्त और तृष्णारूपी जालको जिसने तोड़ डाला ऐसा अरहन्त कभी दुखी नहीं होता।

४

प्रतीत्य समुत्पाद

संसार दुःखरूप है। शरीरमें रोग, जरा-मरण लगा हुआ है। जन्मसे जरा-मरण, शोक, परिदेवना (विलाप), दुःख, मनोमालिन्य, उपायास, (परेशानी) आदिकी उत्पत्ति होती है। इस दुःखका कारण खोजनेके लिए हमें जीवन, जाति अथवा जन्मका हेतु खोजना चाहिए। जबतक रोगका कारण न मालूम हो तो उसकी चिकित्सा नहीं हो सकती। दुःखके कारणोंकी शृङ्खला बहुत लम्बी है। एक कारण दूसरे कारण पर निर्भर है। एककी प्राप्तिसे दूसरेकी उत्पत्ति होती है। प्रतीत्यका अर्थ कारणके प्राप्त होने पर है और समुत्पादका अर्थ 'उत्पत्ति' है। कोई कोई प्रतीत्य अथवा पटिच्चका अर्थ 'हेतु' लगाते हैं अर्थात् 'हेतुसे उत्पत्ति' को प्रतीत्य समुत्पाद कहते हैं। बुद्धदेवने *दुःखके कारणोंकी खोजमें प्रतीत्य समुत्पादके सिद्धान्तोंको इस प्रकार लगाया है:—*

"अविज्जापच्चया संखारा, संखारपच्चया विञ्ञानं, विञ्ञानपच्चया नामरूपं, नामरूपपच्चया सळायतनम्, सळायतनपच्चया फस्सो, फस्सपच्चया

वेदना, वेदनापच्चया तण्हा, तण्हापच्चया उपादानं, उपादानपच्चया भवो, भव-पच्चया जाति, जातिपच्चया जरामरणंशोकपरिदेव दुक्ख दोमनस्सुपायासा संभवन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति। अयं वुच्चति पटिच्चसमुप्पादो।"

अर्थात् अविद्याके कारण संस्कार होते हैं। संस्कारके कारण विज्ञान, विज्ञानके कारण नाम रूप, नाम रूपके कारण षड़ायतन (पंच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन), षड़ायतनसे स्पर्श अर्थात् इन्द्रिय और उसके विषयका स्पर्श, स्पर्शसे वेदना, वेदनासे तृष्णा, तृष्णासे उपादान, उपादानसे भव, भवसे जाति और जातिसे जरा-मरण, शोक, परिदेवना, दुःख दौर्मनस्य, उपायास, (परेशानी) होते हैं। इस प्रकार इस दुःख स्कंधका उदय होता है। इसीको प्रतीत्य समुत्पाद कहते हैं।

यह शृङ्खला इसलिये बतलाई गई है कि यदि इसमेंसे एक कड़ीका निरोध हो तो उससे दूसरीका निरोध हो, एकके रहनेसे दूसरेकी उत्पत्ति होती है। अविद्यासे संस्कारोंकी उत्पत्ति होती है। अविद्या अहंकारको उत्पन्न करती है। अविद्या ही के कारण मनुष्य कर्म करता है। अस्थिरको स्थिर मानना ही अविद्या है। यदि अविद्या न हो तो मनुष्य कर्म न करे। मनुष्य काम, लोभ मोहादिकके कारण ही कर्म करता है। मनुष्य नाशवान्‌को शाश्वत समझ लेता है, तभी वह उसमें आसक्ति करता है और तभी उसके लिये कर्म करता है। कर्मसे ही संस्कार उत्पन्न होकर जो इकट्ठे हों वही संस्कार हैं। संस्कारसे विज्ञान (ज्ञान) उत्पन्न होता है। यही ज्ञान दूसरे जन्ममें साथ जाता है। और ज्ञान शृङ्खलाको आगे ले जाता है। शृङ्खलासे ही दूसरे शरीर-का कारण होता है। विज्ञानसे नाम रूपकी उत्पत्ति होती है। नामसे 'चेतना' का अर्थ लगाया जाता है; और रूपसे 'भौतिक पदार्थ' लगाया गया है। इन

दोनोंसे इन्द्रिय और उनके विषयोंसे मिलनेके स्पर्श होता है।[1] प्रायः सभी इन्द्रियां स्पर्शका रूपान्तर हैं। देखना, सूँघना आदि यह सब स्पर्श ही के प्रकार हैं। स्पर्शसे वेदना अर्थात् सुख-दुःख होता है।[2] सुख-दुःखका कारण तृष्णा है। तृष्णासे उपादानकी उत्पत्ति होती है। उपादान सामग्रीको कहते हैं; यहां पर विशेष अर्थ प्रवृत्तिसे है। तृष्णासे प्रवृत्ति होती है और प्रवृत्तिसे भव अर्थात 'होना' होता है। जब प्रवृत्ति होगी तब उसकी पूर्तिके लिए जीवन होना चाहिए। भवसे जन्म तथा जन्मसे मरण एवं दुःखादिकी उत्पत्ति होती है। इस दुःखके नाशके लिये इसकी मूल अविद्याका नाश करना वाञ्छनीय है। यह शृंखला तीनों जन्मोंसे सम्बन्ध रखती है। पूर्व जन्मसे सम्बन्ध रखनेवाले कारण, अविद्या और संस्कार हैं। वर्तमान जन्मसे सम्बन्ध रखनेवाले कारण विज्ञान, नामरूप, षड़ायतन, स्पर्श,वेदना, तृष्णा और उपादान हैं। अगले जन्मसे सम्बन्ध रखनेवाले कारण भव, जाति तथा जरा-मरण हैं।

हमारी उत्पत्ति पूर्वजन्मकी अविद्या उससे उत्पन्न हुए कर्म और कर्मसे बने हुए संस्कारोंसे होती है। पूर्व जन्मके संस्कारोंका सञ्चय विज्ञानमें रहता है। विज्ञानसे हमारे जीवनका आरम्भ है। इन्द्रिय और उनके विषयसे जो हमको सुख-दुःख होता है उससे उत्पन्न होनेवाली तृष्णा और तृष्णासे उत्पन्न होनेवाली प्रवृत्ति हमारे अगले जन्म लेनेका कारण होती है। हम यदि इस शृंखलाको तोड़ दें, इन्द्रियोंके स्पर्शसे सुख-दुःख न मानें, तृष्णाको न बढ़ावें और उसके कारण अपनी प्रवृत्तियोंको कम कर दें तो हम भव, जाति और जरा-मरण जन्य दुःखसे बच जावें। यही बुद्धदेवकी बतलाई हुई दुःख रोगकी चिकित्सा है।

---

१. इन्द्रिय, विज्ञान और इन्द्रियके विषय, इन तीनोंकी संगतिको स्पर्श कहते हैं।

२. वेदना भी तीन तरहकी है—सुख, दुःख, और न-सुख-न-दुःख।

यह पटिच्च समुप्पादका सिद्धान्त कार्य-कारणके सिद्धान्त पर निर्भर है। जिसके होनेसे होता है और न होनेसे नहीं होता वही कारण हैं। पटिच्च समुप्पादमें यह बतला दिया गया है कि किसके होनेसे क्या होता है। अब उसका भाव यह है कि उसके न होनेसे आगेकी बात न होगी। यह कारणका सिद्धान्त इस प्रकार बतलाया गया है:—

"इमस्मिं सति इदं होति इमस्स उप्पाद इदम् उपज्जति, इमस्मिम् असति इदं न होति; इमस्स निरोधे इदम् निरुज्झति।"

इसी सिद्धान्तका सहारा लेकर बुद्धदेवने कार्य्य कारण शृंखलाको आदिसे तोड़कर भव जरा-मरणके दुःखसे छुटकारा होना बतलाया है।

बुद्धवंशके निम्नलिखित अवतरणसे सिद्ध होता है कि निर्वाण अभावरूप नहीं है। जिस प्रकार सुखका प्रतिकूल दुःख है, उष्णका प्रतिकूल शीतलता है इसी प्रकार निर्वाणको रागादिकके प्रतिकूल माना है—

"यथापि दुक्खे विज्जन्ते सुखानामपि विज्जति; एवं भवे विज्जमाने विभावो पि इच्छितब्बको। यथापि उराहे विज्जन्ते, अपरं विज्जति सीतलं; एवं तिविधग्गि विज्जन्ते निब्बानं इच्छितब्बकं। यथापि पापे विज्जन्ते कल्याणमपि विज्जति एवं जातिम्हि विज्जन्ते अजातिम्पि इच्छितब्बकं।"

त्रिविध अग्नि अर्थात् राग, द्वेष और मोह।

धम्मपदके निम्नलिखित श्लोकमें निर्वाणको लक्ष्य कर उसे अच्युत स्थान कहा है—

"अहिंसका ये मुनयो निच्चं कायेन संवुता।
ते यंति अच्चुतं ठानं यत्थ गंत्वा न सोचति॥

जो सज्जन किसीकी हिंसा नहीं करते और नित्य ही शरीरको संयममें रखते हैं वह अच्युत स्थानको प्राप्त होते हैं, जहां पहुंचकर किसी प्रकारका शोक-संताप नहीं रहता।

इस सम्बन्धमें यह विचार करना चाहिये कि अविद्या क्या है? इसकी काहेसे उत्पत्ति होती है? अविद्या अज्ञानको कहते हैं। इसकी उत्पत्ति आसव द्वारा होती है। आसव चार माने गये हैं। कामासव, भवासव, दृष्ट्या वसव और अविद्यासव। राग-द्वेषादिके आसवको कामासव कहते हैं। जीवनकी इच्छाको भवासव कहते हैं। यथार्थ विचार न रखना दृष्टिका आसव कहलाता है; और आर्य-सत्योंका अज्ञान अविद्यासव माना जाता है। इन आसवोंके दूर करनेसे अविद्याका नाश होता है और अविद्याके नाशसे आगेकी शृंखलाका नाश होता है।

बुद्धदेवका मुख्य उद्देश्य दुःखका नाश करना है। दुःख जीवनसे लगा हुआ है। जबतक तृष्णा और कर्मका क्षय न होगा, दुःखका नाश न होगा। पिछले जन्मके संस्कार हमारे वशसे बाहर हैं। हमको ऐसे कर्म करना चाहिए जिनसे आगेके संस्कार न बनें। जो कर्म दूसरेके उपकारके हेतु अथवा परमार्थके विचारके सम्बन्धमें किये जाते हैं, उनसे तृष्णाकी उत्पत्ति नहीं होती। तृष्णाकी उत्पत्ति तब ही होती है जब कि कोई कार्य व्यक्तिगत सुखार्थ किया जाता है। यदि हम जरा-मरणके दुःखसे बचना चाहते हैं (हम यदि न बचना चाहें तो हमारी मूर्खता है) तो हमको ऐसा करना चाहिए कि हम भव एवं जातिसे बचें, इसके लिए विषय-वासना, तज्जन्य सुख, उसके लिए तृष्णा, प्रवृत्ति और भवेच्छाका त्याग करना चाहिए। त्याग ही बौद्ध कर्तव्यका मूलमन्त्र है। वासनाका क्षय ही बुद्धधर्म प्रतिपादित निर्वाणका परम पुनीत साधन है। यही पटिच्च समुप्पादका मुख्य लक्ष्य है।

पञ्चशील

पञ्चशील इस प्रकारसे हैं:—

१—हिंसाका निषेध।

२—चोरीका निषेध।

३—व्यभिचारका निषेध।

४—असत्यका निषेध।

५—मादक द्रव्यका निषेध।

यह पञ्चशील गृहस्थ तथा भिक्षुओंके लिए समान हैं। नीचे पांच और नियम—विशेषकर—भिक्षुओंके लिये हैं। इनका पालन करना गृहस्थोंके लिए कठिन है।

१—निश्चित समयके अतिरिक्त भोजन न करना।

२—आभूषण और पुष्पहार धारण न करना तथा सुगंधित द्रव्योंका त्याग करना।

३—ऊँचे या चौड़े पलंगका निषेध। केवल नीची चारपाई पर शयन करना।

४—नृत्य, गान, वाद्य और सांसारिक दृश्योंसे बचना।

५—सोना, चाँदी आदिको न रखना और न किसीसे ग्रहण करना।

इन दश शीलोंके अतिरिक्त दश पारमिताएं अर्थात् पूर्णताएं और मानी गई हैं—

१—दानपारमिता।

२—सीलपरमिता (शील)

३—खान्ति (क्षान्ति) पारमिता।

४—नेक्खम्म (नैष्कम्य) पारमिता।

५—मेत्ता (मैत्री) पारमिता।

६—विरिय (वीर्य) पारमिता।

७—सच्च (सत्य) पारमिता।

८—पञ्ञा (प्रज्ञा) पारमिता।

९—उपेक्खा (उपेक्षा) पारमिता।

१०—समाधि पारमिता।

इनके अतिरिक्त दश संयोजन अर्थात् बन्धन जिनसे मनुष्यको बचना चाहिये, इस प्रकार बतलाये गये हैं—

१—सक्काय दिट्ठि (सत्काय दृष्टि) अर्थात् व्यक्ति अथवा शाश्वत आत्मामें विश्वास करना।*

२—विचिकित्सा अर्थात् संदेह, जो लोग कर्तव्यसे बचना चाहते हैं वे सन्देह करते हैं।

३—सीलव्वत परामासो, (शीलव्रत परामर्श) झूठे आडम्बर और शिष्टाचार जिसके कि भीतर कोई सार न हो। केवल बाल बढ़ा लेना, रङ्गीन वस्त्र धारण करना, जब कि हृदयमें धार्मिक भावोंका अभाव हो, व्यर्थ है। जबतक भीतरका मैल साफ न किया जाय तबतक जटा तथा मृगचर्मसे कुछ नहीं होता—

किं ते जटाहि दुम्मेध किं ते अजिन साटिया।
अब्भन्तरं ते गहनं बाहिरं परिमज्जसि॥

अर्थात् भारी जटाओं और मृगछालाओंसे क्या होगा, तेरे भीतर तो

---

* यह बौद्धधर्ममें सबसे बड़ी अविद्या गिनी जाती है; किन्तु इसके साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि आत्माको शाश्वत न मानकर चारवाकोंके—

"ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्
भस्मी भूतस्य देहस्य,
पुनरागमनं कुतः॥"

—वाले स्वेच्छाचार मय सिद्धान्तोंमें कभी न पड़ना चाहिये।

तृष्णारूपी सघन बन लगा हुआ है उसको जलाया नहीं है, बाहरके मल धोनेसे क्या होता है ?

४—कामराग—कामवासना और विषय-लोलुपता सन्मार्गके बाधक माने गये हैं। जो जितेन्द्रिय होते हैं वही शक्तिशाली आदि पुरुषार्थी कहे जाते हैं।

५—पटिघ—परायेके लिए अहित चिन्तन करना। जो दूसरेके लिए अहितका चिन्तन करता है वह उन्नति नहीं कर सकता। यदि हम दूसरोंके लिए भला नहीं कर सकते तो हमको दूसरोंका बुरा भी नहीं करना चाहिये।

६—रूपराग—जो लोग धर्मको इसलिए करते हैं कि दूसरे जन्ममें सुख और शान्तिमय जीवन प्राप्त करें वह लोग बन्धनसे मुक्त नहीं कहे जा सकते; क्योंकि बौद्धधर्ममें जीवनकी इच्छा करना ही निर्वाणको दूर हटाना है।

७—अरूपराग—केवल पृथ्वी पर ही ऐश्वर्यकी इच्छा करना बन्धन नहीं है वरन् स्वर्ग आदिमें उत्तम स्थान वा यश वा आदर प्राप्त करनेकी इच्छा भी जीवनके लिये बन्धन है।

८—मान—अभिमान सदा पतनका कारण होता है। अभिमान मनुष्यमें मोह और ममत्वका भाव पैदा कर देता है।

९—उद्धच्च—(औद्धत्य) अपनी बड़ाईमें प्रसन्न होना यह मानका एक दूसरा रूप है, किन्तु उससे उग्रतर है। यह विनयके प्रतिकूल है और नीचता का सूचक होता है।

१०—अविद्या—यह सब बन्धनोंका मूल कारण है और सारे भवका स्रोत इसीसे चलता है। इसके ही नाशसे भवका भी नाश हो सकता है।

इन सब बन्धनोंसे मुक्त होना मनुष्यको निर्वाणके ऊपर ले जाता है। सत्कर्ममें केवल बुरे कर्म ही से बचना नहीं वरन दूसरोंके साथ करुणा एवं मैत्रीका भाव रखना आवश्यक है। सबको आत्मवत् देखना और उनके साथ

मैत्रीभाव रखना ही मनुष्यका कर्तव्य है। बुद्धदेवने अपने पूर्वजन्मोंमें दूसरोंके हितार्थ अपने जीवनका बलिदान कर दिया था। बौद्धधर्मका मुख्य आधार कर्तव्यपर है। कर्तव्य-पथपर चलना ही मनुष्यको बुरे संस्कारोंसे बचाता है और तृष्णा तथा वासनाके क्षयमें सहायक होता है। सम्यक् कर्म मनुष्यको निर्वाण पथके लिए तैयार कर देता है। इस निर्वाण पथका कोई दूसरा सहायक नहीं होता, केवल अपना ही कर्म सहायक होता है।

अत्ताहि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया।
अत्तनाव सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं॥

[ये दस संयोजन सौत्रान्तिकोंके मतसे हैं। आभिधर्मिकोंके मतमें थोड़ा अन्तर है। कामराग, भवराग, पटिग, मान, दिट्ठि, सीलव्वत, परामासो, विचिकिच्छा, इस्सा (ईर्ष्या), मच्छरियो (मात्सर्य), अविज्जा [अभिधम्मत्थ संगह ७, ११]

५

निव्वान [निर्वाण]

बौद्ध धर्ममें निर्वाण शब्दकी व्याख्याको लेकर पंडितोंमें काफी मतभेद है। अष्टाङ्गिक मार्गकी सब श्रेणियोंको उत्तीर्ण करके मनुष्य किस परमपदको प्राप्त करता है? उसका क्या स्वरूप है? यह प्रश्न प्रत्येक विचारशील मनुष्यके मनमें आता है। बौद्ध धर्मके सिद्धान्त मनुष्यको दुःखक्षयकी ओर ले जाते हैं तथापि वह दुःखक्षय बिना उद्योगके नहीं प्राप्त होता। उस उद्योगका क्या फल है? इसका उत्तर यही मिलता है कि दुःखसे निवृत्ति। दुःखसे निवृत होकर क्या रह जाता है? इसका उत्तर स्पष्ट नहीं मिलता। मनुष्य अपने वासनामय कर्मोंसे एक भावकी विभीषिका बनाए हुए हैं। यह विभीषिका दूर हो जाती है, उसका सारा भयानक दृश्य छिन्न-भिन्न हो जाता है। क्या हम उस विभीषिकासे मुक्त होकर किसी अन्य वास्तविक संसारमें आते हैं? इसका बुद्ध धर्मकी ओरसे यही उत्तर दिया जायगा कि विभीषकामें पड़ा हुआ मनुष्य उसके दुःखसे मुक्त होना चाहता है। वह मुक्तावस्थाको सोच नहीं सकता। फिर भी यह प्रश्न रहता है कि

हम उसकी वास्तविक अवस्थाका रूप अपने मनमें चिन्तित न कर सकें, किन्तु वह वास्तवमें ऐसी अवस्था है भी या नहीं? इसका स्पष्ट उत्तर नहीं मिलता। बौद्ध धर्म आत्माको नहीं मानता। बौद्ध लोग सब वस्तुको अनित्य और दुःखमय मानते, सबको अनात्म मानते हैं। पञ्चस्कन्धों अर्थात् रूप, वेदना, संज्ञा, षडायतन तथा विज्ञानकी कर्मरज्जु क्षीण होकर टूट जाती है तो स्कंध टूटकर पृथक् हो जाते हैं। आत्म-प्रतीतिका भी नाश हो जाता है। वासनाका क्षय हो जानेसे नाम-रूप इन्द्रधनुषके चित्र विचित्र रङ्गोंकी भांति विलीन हो जाते हैं। स्कन्धोंके पृथक्-पृथक् हो जानेपर क्या रह जाता है? सो भी नहीं मालूम, क्योंकि स्कन्ध भी अनित्य हैं, क्षणिक हैं, वह भी संघातके कारण दिखाई नहीं पड़ते हैं। बौद्ध सिद्धान्तोंको यदि चरम सीमातक पहुंचाया जावे तो कुछ नहीं रहता। निर्वाण निःशेषताका ही नाम है। निर्वाण दीपकके बुझनेको कहते हैं। "निर्वाण-दीपे किमुतैलदानम्" इसी आधारपर निर्वाणका अर्थ आत्माका विलोप लगाया जाता है। बौद्ध ग्रंथोंमें बहुतसे ऐसे स्थल आते हैं जो इस दृष्टिके अनुकूल हैं। स्वयं बुद्धदेवसे जब बच्छगोत्त परिव्राजकने आत्माके विषयमें पूछा कि वह शाश्वत है या नहीं, इसपर उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। प्रश्नके दुबारा पूछे जानेपर भी कोई उत्तर नहीं मिला। मिलिंदने नागसेनसे पूछा कि 'क्या बुद्ध हैं?" जवाब मिला—हाँ, भगवान् हैं। फिर राजा मिलिंदने पूछा कि आप उसका स्थान निर्देश कर सकते हैं कि वे कहां हैं? उत्तर मिला—महाराज, भगवान्ने निर्वाणमें इस प्रकार परिनिर्वाण प्राप्त किया है कि उनकी कोई उपाधि शेष नहीं रह गई है, इसीलिये उनके बारेमें निर्देश करके नहीं कहा जा सकता कि वे यहां वा वहां है?' उदाहरणके लिये नागसेनने प्रज्वलित अग्निशिखाके बुझने-की उपमा देकर कहा—"इसी प्रकार महाराज, भगवान्ने इस प्रकार परि-

निर्वाण प्राप्त किया है कि उनकी कोई उपाधि शेष नहीं रह गई, वे अस्त हो गये हैं, यह नहीं कहा जा सकता कि यहां हैं या वहां हैं। किन्तु महाराज, धर्मरूप शरीरमें उन्हें निर्दिष्ट करके दिखाया जा सकता है क्योंकि उन्होंने धर्मका उपदेश किया है।

राजा मिलिन्दने आचार्य नागसेनसे निर्वाणके विषयमें पूछा तो उन्होंने उसको बतानेमें अपनी असमर्थता प्रकट की। क्योंकि दुनियामें और कोई चीज़ उसके समान नहीं है। मिलिंदने कहा कि यह हो नहीं सकता कि जो चीज़ है उसको कहकर बताया न जा सके। इसपर उन्होंने महासागरकी उपमा दी। कहा कि जिस प्रकार महा समुद्र है किन्तु कोई कह नहीं सकता कि वह कितना बड़ा है, कितना गम्भीर है, उसी प्रकार निर्वाण भी है पर उसे बताया नहीं जा सकता।

निर्वाण दो प्रकारका माना गया है। (१) उपाधिशेष (२) निरुपाधि शेष—इसीको पूर्ण निर्वाण भी कहते हैं। इसका वर्णन प्रायः निषेधात्मक ही आता है।

बौद्ध ग्रन्थोंमें ऐसे उपदेश वाक्य मिलते हैं जिनमें निर्वाणके विषयमें निषेधात्मक वर्णन मिलते हैं, न वहां मृत्यु है, न जन्म है, न देश है, न काल है। एक स्थान पर कहा गया है कि—

हे आयुष्मान्, जहांपर न कोई जन्म लेता है, न वृद्ध होता है, न मरता है, न एक देशको छोड़ दूसरे देशको जाता है, और पुनर्जन्मको प्राप्त होता है वह संसारका अन्त है। मैं कहता हूं कि वह चलकर नहीं प्राप्त हो सकता है। वह न देखा जा सकता है और न पहुंचा जा सकता है।

ऐसे निषेधात्मक वर्णनोंसे दोनों प्रकारका नतीजा निकाला जा सकता है। एक तो अत्यन्ताभावका और दूसरा अनिर्वचनीयताका। अत्यन्ताभावका अर्थ

बौद्ध सिद्धान्तोंके अनुकूल पड़ता है। किन्तु मनुष्यकी हार्दिक इच्छाओंके अनुकूल नहीं है। मनुष्य बन्धनसे मुक्ति केवल इसलिये नहीं चाहता कि दुःख असह्य है वरन् इसलिये भी कि जेलके बाहर उसके लिये घर है। बुद्ध भगवान् इस इच्छासे दुःखकी निवृत्तिको एक प्रकारकी भवेच्छा अर्थात् जीवन इच्छा कहते हैं; और इसी हेतु उन्होंने निर्वाणका भावात्मक वर्णन नहीं किया। कुछ लोगोंका तो यह निश्चय है कि निर्वाण वास्तवमें अभावात्मक दशा है और जिस प्रकार घोर क्लेशमें पड़े हुए मनुष्यको दुःखसे छूटनेके सिवाय और कुछ नहीं चाहिए (दुःखसे छूटना ही उसके लिये परमानन्द है) इसी प्रकार निर्वाणके चाहनेवालाका दुःखसे छूटनेके पश्चात् क्या होगा यह पूछना निरर्थक है। दूसरा मत यह है कि निरर्थक चाहे अवश्य हो, उसका वर्णन चाहे न हो सके, पर वह है अवश्य। इसी मतवाले लोग स्पष्टरूपसे ऐसा कहते हैं कि:— जिन्होंने अभी बोधको प्राप्त नहीं किया है, और जो सब बोधको नहीं प्राप्तकर चुके हैं और जिन्होंने सबोंके दुःखका नाश किया है। वे धर्मके प्रचारक स्थित हैं और स्थित रहेंगे। ऐसा ही बौद्धोंका धर्म है।

निर्वाणकी शाश्वतताका जो विचार प्राचीन पाली धर्म-ग्रन्थोंमें बीज रूपसे था वह महायानके संस्कृत ग्रन्थोंमें स्पष्टताको प्राप्त हो गया है। उन्होंने बुद्धदेवको शाश्वत रूपसे माना है। इतना ही नहीं उन्होंने एक आदि बुद्ध माना है जो कि ईश्वरका स्थान पा जाते हैं। वे लोग कहते हैं कि बुद्धदेवका नाश नहीं हुआ। उन्होंने उन लोगोंके हितार्थ जिनको कि शिक्षा प्राप्त करनी है, नाशका उपदेश दिया है।

कुलपुत्रास्तथागतेन कर्तव्यं तत्तथागतः करोति। तावचिराभिसंबुद्धोऽपरिमितायुष्प्रमाणः तथागतः सदा स्थितः। अपरिनिर्वृतस्तथागतः परिनिर्वाणमादर्शयति वैनेयवशेन।"—सद्धर्म पुण्डरीक सूत्र, १५ अध्याय।

अर्थात्—कुलीन तथागतोचित कर्म करते हैं। तथागत, जिन्होंने चिरकालसे बोध प्राप्त कर लिया है, अपने आप परिमाणमें अपरिचित हैं और सदा स्थित हैं अर्थात् निःशेष नहीं हुए। परिनिर्वाणका उपदेश *शिक्षाके लिये देते हैं* जिससे लोग आनन्द एवं उपेक्षामें न पड़ जावें। यदि निर्वाण आत्म-रूपी दीपकका *बुझ जाना नहीं है तो क्या* हो सकता है? वह एक शान्तिकी स्थिति है जिसमें न जन्म है न जरा है और न मरण। जिस प्रकार आँधीके मिट जानेपर एक शान्त वायु बहती है वैसे ही निश्चल निर्वाणमें आत्माकी स्थिति है। जीवन एक आँधी है जो वासनाओंकी गर्मीसे उत्पन्न होती है। वासनाओंके दूर हो जानेसे निर्मल वायुमण्डलकी-सी आत्माकी स्थिति हो जाती है। उसमें किसी प्रकारका क्लेश, राग, द्वेष, नहीं रहता।

यद्यपि यह कहना कठिन है कि स्वयं बुद्धदेवने निर्वाणको भावात्मक माना है अथवा अभावात्मक। तथापि यह अवश्य कहना पड़ेगा कि जब विषयोंमें उन्होंने दोनों अन्तोंसे दूर रहकर मध्यमा प्रतिपदा अर्थात् बीचकी राह स्वीकार की तो निर्वाणके सम्बन्धमें इस मार्गको छोड़ देना उचित न होगा। निर्वाणके सम्बन्धमें बुद्धदेवका मौन रहना इस बातका द्योतक है कि न वह उसको शाश्वत ही मानते हैं और न अशाश्वत। निर्वाण न पूर्णतया भावात्मक है न पूरा पूरा अभावात्मक[1]। भाव इतना ही है कि वह एक शान्त निश्चल अवस्था है। अभावात्मक इस अंशमें है कि उसमें जीवन, मरण, उत्थान, पतन, सर्ग, विसर्ग, वासनाका नाश हो जाता है किन्तु अत्यन्ताभाव नहीं होता, जो कुछ रहता है वह एक आनन्दकी अवस्था है। धम्मपदका एक श्लोक इस मतकी

१—न चाभावोऽपि निर्वाणं, कुत एवास्य भावता।
भावाभावविनिर्मुक्तः पदार्थो निर्वाणमुच्यते॥
(रत्नकूट सूत्र)

पुष्टि करेगा ।

"सिच भिक्खु इमं नावं सित्ता ते लहुमेस्सति ।
छेत्वा रागं च दोसञ्च ततो निब्बानमेहिसि ॥"

अर्थात हे भिक्षुकगण ! इस आत्म-भाव रूपी* नौकाको बुरी वासनाओंके जलसे खालीकर । खाली होकर वह हलकी चलेगी, राग तथा द्वेषको छेदकर फिर निर्वाणको प्राप्त होगी । इस नौकाको खाली करना लिखा है और नौकाके पहुंचनेका भी एक लक्ष्य है ।

बन्धनसे मुक्त होनेका आनन्द भावात्मक आनन्द मान लिया गया है । धम्मपदके नीचेके श्लोकोंमें इस आनन्दकी थोड़ी बहुत झलक मिलती है । देखिये :—

जिघच्छा परमा रोगा संखारा परमा दुखा ।
एतं ञत्वा यथाभूतं निब्बानं परमं सुखं ॥
आरोग्या परमा लाभा सन्तुट्ठी परमं धनं ।
विस्सासो परमा ञाति, निब्बानं परमं सुखं ॥

अर्थात् क्षुधा परम रोग है, संस्कार परम दुःख है, ऐसा यथार्थ रूपसे जानकर निब्बान परम सुख है, आरोग्यता परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वास परम जाति है, और निब्बान ही परम सुख है ।

जो लोग अभाव ही अभाव मानते हैं वे इन श्लोकोंसे यह अभिप्राय लेते हैं कि जिस प्रकार दुःखसे चिल्लाते हुए रोगीको मरण भी एक आनन्द है उसी प्रकार पुनर्भव बार बार जीने मरनेके दुखसे पीड़ित मनुष्यके लिये सब संस्कारोंसे अशेष हो जाना परमानन्दका विषय है । जो लोग भावात्मक अर्थ

---

* इमं अत्तभाव संखातं नावं—धम्मपद भिक्खुवग्ग १० पर बुद्धघोषकी अट्ठकथा ।

लगाना चाहते हैं उनका कहना यह है कि बुद्धदेवने भावात्मक वर्णन स्पष्ट रूपसे नहीं किया किन्तु उनमें भावात्मक आनन्द अव्यक्त रूपसे है।

किसी किसी सम्प्रदायमें कहा गया है कि निर्वाणमें न निरोध है और न उत्पत्ति ; न उच्छेद है, न शाश्वतता है ; न एकार्थ है, न अनेकार्थ है और न आना है और न जाना।

"अनिरोधमनुत्पादमनुच्छेदमशाश्वतं।
अनेकार्थमनानार्थमनागममनिर्गमम्॥"

उसमें सुख दुःख भी नहीं रहता।

"यथा च अत्तानावेदी मुनि मोनेन ब्राह्मणो।
अथ रूपा अरूपा च सुख दुक्खा पमुच्चतीति॥"

अर्थात्—जब कि ब्राह्मण (जाति विशेषसे अभिप्राय नहीं) मौन समाधि द्वारा आत्म ज्ञानको प्राप्तकर साधु बन जाते हैं उस समय रूप, अरूप सुख तथा दुःख सब शान्त हो जाते हैं। यह वेदान्तके आदर्शसे भिन्न नहीं हैं। इसी परमपदके लिये यत्नवान रहनेके निमित्त बुद्धदेवने उपदेश किया है। श्री मद्भगवद्गीतामें भी इस पदको प्राप्त करनेके लिये कहा गया है।

६

सम्प्रदाय

प्रायः जाति सम्बन्धी नाम भ्रमात्मक होते हैं। प्रायः ऐसा देखा गया है कि एक नामसे पुकारे जानेवाले व्यक्तियोंमें आकाश पातालका भेद होता है। किसी कालमें तो इस पृथ्वीतल पर बौद्धधर्मके माननेवालोंकी संख्या अन्य मतावलंबी जनोंकी अपेक्षा अवश्य अधिक थी। ऐसे विस्तृत धर्ममें शाखा प्रशाखाओंका होना स्वाभाविक ही है। भगवान् बुद्धदेवके निर्वाणके थोड़े ही काल पश्चात् भेदका अङ्कुर फूट चला था। वास्तवमें इस भेदभावका बीज महात्मा बुद्धके जीवन कालमें ही वर्तमान था, किन्तु उनके अलौकिक प्रभावके कारण वह अपना प्रभाव न दिखा सका। उनके कुटुम्बी देवदत्तने पार्थक्य का सूत्रपात किया था, किन्तु अन्त समयमें उसको उन्हींकी शरणमें आना पड़ा। बुद्धसंघके नियम बड़े दृढ़ और कठिन थे। जैसे जैसे बुद्ध मतका प्रसार होता गया, वैसे वैसे लोग अपने सुभीतेकी गुंजाइश खोजने लगे। राजगृहमें सङ्घकी जो महासभा हुई थी उसीमें नियमोंका बन्धन कुछ ढीला करनेका प्रयत्न किया गया था; किन्तु उस प्रयत्नमें सफलता न हुई। वैशालीकी

सभामें फिर प्रयत्न किया गया। उस सभाके स्थविरों (वृद्धजनों) ने उस प्रयत्नको दूषित ठहराया। इससे असन्तुष्ट होकर सुविधाके इच्छुकोंने महा-सङ्गीति नामसे एक पृथक् सभा की। इसके प्रवर्तक महासंघिक नामसे प्रख्यात हुए क्योंकि उस सभामें ऐसे ही मनुष्योंकी संख्या अधिक थी। इन दोनों शाखाओंके भेद उपभेद होकर बौद्धोंके १८ सम्प्रदाय हो गये। महायान और हीनयान नामके दो मुख्य भेदोंका भी प्रारम्भ यहींसे हुआ था। महासंघिक लोगोंका सम्प्रदाय महायान नामसे पुकारा जाने लगा था। इसी प्रकार स्थविर-वादियोंका जो संगठन हुआ वह हीनयान सम्प्रदाय कहलाया। इस सम्प्रदायका प्रसार लङ्का आदि दक्षिणी देशोंमें हुआ। इसीसे बौद्ध धर्मके उत्तरी और दक्षिणी नामसे दो विभाग हो गये। भारतवर्षमें हीनयान सम्प्रदायका प्रचार ईसाके पश्चात् प्रायः ५०० वर्ष तक रहा और महायानका प्रचार ईसाके पश्चात् पहली शताब्दीसे लेकर ७०० वर्ष तक रहा। महायान और हीनयानके भेदकी मुख्य मुख्य बातें इस प्रकारसे हैं :—

(१) हीनयानके अनुसार बुद्धत्व विशेष-व्यक्तिगत वस्तु है। प्रत्येक व्यक्ति बुद्धत्व तो नहीं प्राप्त कर सकता किन्तु अर्हत्त्व अपनी साधनासे प्राप्त कर सकता है। गौतम बुद्धने इस पदको अपने पुरुषार्थसे प्राप्त किया। और लोग भी उनके आदर्शका अनुसरण कर (उनकी सहायतासे नहीं) विनयके नियमों का पालन करते हुए अर्हत्त्व प्राप्त कर सकते हैं। महायानके अनुसार बुद्धत्व सामाजिक है; अर्थात् बुद्धदेवने स्वयं अपने ही लिये नहीं, वरन् सारे संसारके अर्थ पुरुषार्थ किया एवं जबतक सारा संसार बुद्धत्वको न प्राप्त हो जायेगा उनको विश्राम न मिलेगा। भक्तप्रवर प्रह्लादका भी ऐसा ही आदर्श था। उन्होंने स्वयं अपने लिये मुक्ति ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया था।

प्रायेण देवमुनयः स्वविमुक्तिकामाः।
मौनं चरंति विजने न परार्थनिष्ठाः॥
नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एको।
नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोनुपश्ये॥

हीनयानका आदर्श आग लगे हुए घर या डूबते हुए जहाजका-सा है। ऐसे समयमें सबको अपनी अपनी पड़ती है। अतएव अपने आदर्शकी उच्चता के कारण ही महायानवाले अपनेको महायान (महा=बड़ा, यान=सवारी अर्थात् पथ) नामसे पुकारते हैं और अपनेसे इतर लोगोंको हीनयान अर्थात् छोटे मार्गवाले बतलाते हैं। छोटे मार्गवालोंका कहना है कि जो लोग कठिन परिश्रम नहीं कर सकते हैं उन्हें सुगम और चौड़े मार्गकी आवश्यकता है। ईसामसीहने भी कहा है कि संकीर्ण हैं वे मार्ग जो स्वर्गको ले जाते हैं।

(२) हीनयानवाले थेरवाद अथवा स्थविरवादको अर्थात् राजगृहकी प्रथम सभामें निश्चित किये हुए सिद्धान्तोंको जो त्रिपिटिकमें समाविष्ट हैं स्वयं बुद्धदेवके उपदेश मानते हैं। महायानवाले पिछली सभाओंकी कार्यवाहीको प्रामाणिक मानते हैं। हीनयानवालोंके प्रायः सब धर्मग्रन्थ पालीमें हैं। महायानवालोंके धर्मग्रन्थ गाथा संस्कृत (अर्थात् प्राकृत-मिश्रित संस्कृत) और संस्कृतमें हैं।

(३) हीनयानके मतसे बुद्धदेव साधारण मनुष्य थे और उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त किया। किन्तु महायान वालोंने आदि बुद्धको माना है और उनको सचमुचका ईश्वर बना दिया है *। महायानके देवीदेवता और उनकी पूजोपचार विधि बहुत विस्तृत और तारतम्ययुक्त है। उसमें प्रायः सभी हिन्दू देवी देवताओंके समान पद्मपाणि अवलोकितेश्वर, अमिताभ मंजुश्री आदि देवता पाये जाते हैं। महायानमें भक्ति और शरणागति द्वारा मोक्ष या

* इसी अध्यायके अन्तका परिशिष्ट देखिये।

निर्वाणका विचार प्रचार पा गया और इस सम्प्रदायवाले ईसाई मुसल्मानोंकी भांति सिफारिश द्वारा बख्शे जानेमें विश्वास करने लग गये। हीनयानमें त्याग द्वारा वासना क्षय पर अधिक ध्यान रहा है। हीनयानमें अपने सिवाय और कोई सहायक नहीं माना गया है।

(४) हीनयान अपने उच्च आदर्श और कठिन व्रतके कारण छोटा यान है। उस पर सब नहीं चढ़ सकते हैं। कई प्रज्ञा पारमिता सूत्र महायान मतमें बहुत प्रामाणिक माने जाते हैं। अष्ट साहस्रीके प्रज्ञापारमिता सूत्रमें महायान-की व्याख्या करते हुए बतलाया गया है। 'ऐसा कहे जानेपर आयुष्मान सुभूतिने भगवानसे इस प्रकार कहा—भगवन्! विस्तृत होनेसे महायान कहलाता है। आकाशके समान अवकाशवाला होनेके कारण वह देव, मनुष्य और दानवोंको स्थान देता है। इसीलिये महायान है। जिस प्रकार आकाशमें अप्रमेय असंख्य तत्वोंके लिये अवकाश है उसी प्रकार इस यानमें भी असंख्य अप्रमेय सत्वोंके लिये गुञ्जायश है।'

यद्यपि बौद्धोंके मतसे अठारह या बीस सम्प्रदाय माने जाते हैं (चीन और जापानमें इनके अतिरिक्त और भी हैं) तथापि हिन्दू दार्शनिकोंने चार-का ही उल्लेख किया है। शायद उस समय जब कि हिन्दू दार्शनिक इनके सम्पर्कमें आये अन्य छोटे-छोटे सम्प्रदाय इनमें लीन हो गये होंगे। ये सम्प्र-दाय इस प्रकार हैं—वैभाषिक, सौत्रान्तिक, माध्यमिक और योगाचार। पहले दो मतोंका हीनयानसे सम्बन्ध है और दूसरे दो मतोंका महायानसे।

वैभाषिक और सौत्रान्तिक सर्वास्तिवादी सम्प्रदायके अन्तर्गत माने जाते हैं, यद्यपि वास्तविकरूपसे वैभाषिक ही सर्वास्तिवादियोंके प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। दोनों ही वाह्य सत्ताका अस्तित्व स्वीकार करते हैं और दोनों ही परिमाणुओं और अठारह धातुओंको मानते हैं। किन्तु इनमें बहुत सी बातोंमें भेद है।

विज्ञानका मूल स्रोत आलय विज्ञान है। आलय विज्ञानका अभिप्राय कहीं तो व्यक्तिके चित्रसे ही लिया गया है और कहीं उस विज्ञानरूप सत्ताका वाचक माना गया है जिसमें व्यक्तित्व उत्पन्न होता है। आलय विज्ञान करीब करीब अहम्का स्थान ले लेता है। आलय विज्ञानके साथ प्रवृत्ति विज्ञान भी माना गया है, समुद्र आलय विज्ञान है और उससे उठनेवाली तरंगें प्रवृत्ति विज्ञान हैं किन्तु समुद्र तरङ्गसे अलग नहीं है। तरङ्गोंसे अलग समुद्र मानना समुद्रको शाश्वत मानना है। योगाचारवाले इससे बचे हुए हैं। योगाचारके मतसे विज्ञानके बल व्यक्तिके ज्ञानमें संकुचित नहीं है। व्यक्तिका ज्ञान उस विज्ञान (आलय विज्ञान) का अंश है। आलय विज्ञान व्यक्तित्व उत्पन्न करनेवाली अविद्या है जिसका मूल रूप वासना है। वासना व्यक्तित्वकी धाराको बनाये रखती है। आलय विज्ञानसे भी ऊंचा एक पदार्थ तथागत गर्भ है। वह वेदान्तियोंका सत्ता सामान्य अर्थात् सत्ता मात्र है। इनके मतसे बाह्य सत्ताका मानना क्षणिकवादके विरुद्ध है, क्योंकि ज्ञानके समय वस्तु नष्ट हो जातीहै, इस हिसाबसे ज्ञान नष्ट हुई वस्तुका हुआ न कि प्रत्यक्ष वस्तुका और जब बिना वस्तुके ज्ञान ठहर सकता है तब फिर बाह्य वस्तु अनावश्यक है। तथागत गर्भके माननेवाले बाह्यसत्ताके अस्तित्वको तो नहीं मानते, परन्तु उसके साथ शून्यवादको भी नहीं मानते। ये शून्यवादका इस प्रकार खण्डन करते हैं कि जो शून्यमें विश्वास करता है वह न अपने ही मतको सिद्ध कर सकता है न दूसरेके मतको। शून्यके लिये पहिले उस वस्तुकी आवश्यकता है जो शून्य हो जाती है और फिर उस वस्तुकी जिसके अभावसे शून्यता आती है। जब हम यह कहते हैं कि यह बोतल खाली है तब उस विचारके सत्यके लिये पहिले तो कोई बोतल चाहिये फिर कोई पदार्थ, जिसके न रहनेसे बोतल *खाली कही जाती है। जब ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं तब शून्यता किसकी ?*

वास्तवमें माध्यमिक सिद्धान्त ऐसी शून्यताका प्रतिपादन नहीं करता। माध्यमिक सिद्धान्तका निरूपण करते समय यह बात स्पष्ट हो जायगी। तथागत गर्भके सिद्धान्तको अश्वघोषने भी माना है। तथागत भाव और अभाव दोनोंसे परे है उसका लक्षण वही हो सकता है, इसीलिए उसको तथागत कहा है। बुद्धदेवको भी लोग तथागत गर्भ कहते हैं। इसी तथतामें भवका भ्रम उत्पन्न होता है। यह सिद्धान्त वेदान्तके बहुत निकट आ जाता है किन्तु इसको शाश्वतवाद न मानना चाहिए। लंकावतार सूत्रोंमें यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि यह सिद्धान्त शाश्वत आत्मामें विश्वास रखनेवालों लोगोंको आकर्षित करनेके लिए प्रतिपादित किया गया है। खैर, झूठ ही सही। किन्तु इससे यह अवश्य ही सिद्ध होता है कि लोगोंको ऐसी शाश्वत आत्मा माननेकी आवश्यकता है। योगाचारी वास्तविक सत्ताके जाननेके लिये योगका आचार या क्रिया बतलाते हैं, इसीसे उसका नाम योगाचार पड़ा।

माध्यमिक सम्प्रदायके लोग शून्यवादी कहलाते हैं किन्तु यह भाव और अभावके बीचकी स्थितिको मानते हैं। इसीलिये उसका नाम माध्यमिक पड़ा। अतो भावाभावानाद्वयरहितत्वात् सर्वस्य भावानुत्पत्ति लक्षणा शून्यता मध्यमा प्रनिपन्नमध्यमो मार्ग इत्युच्यते। अर्थात् भाव और अभाव दोनों अन्तोंसे रहित होनेके कारण सब स्वभावोंके (अर्थात् वस्तुओंके) अनुत्पत्ति लक्षणवाली शून्यता नामके बीचवाले रास्तेको मध्य मार्ग कहते हैं। यह बीचकी अवस्था आठ प्रकारका नाहींमें रहती है :—

अनिरोधम् अनुत्पादम् अनुच्छेदम् अशाश्वतम्।
अनेकार्थम् अनानार्थम् अनागमम् अनिगमम्॥

अर्थात् निरोध (प्रभाव) नहीं है, उत्पत्ति भी नहीं है, उच्छेद (नाश) नहीं है, शाश्वत भी नहीं, एकता नहीं है, और अनेकता भी नहीं है, आना भी

नहीं है और जाना भी नहीं है। यह भी श्रुतिकीसी नेति नेति नहीं है। माध्यमिक लोगोंने सब वस्तुओंके अस्तित्वकी असम्भावना दिखाई है, जिसका अभिप्राय यह है कि किसी वस्तुको सत् नहीं कह सकते। किन्तु जब वह दिखाई पड़ती है, उसे असत् भी नहीं कह सकते। जो वेदान्तियोंकी माया का स्वरूप है वही उनकी शून्यताका रूप है। इनका कहना है कि हमको किसी वस्तुका ज्ञान ही नहीं हो सकता है, क्योंकि किसी वस्तुके पूर्ण ज्ञानके लिए हमको उसके विपरीतका ज्ञान उसके बिना नहीं हो सकता। पूर्ण ज्ञान होनेमें अन्योन्याश्रय दोष आ जाता है जैसा कि कहा है:—

"यस्मात् नहि स्वभावानां प्रत्ययादिषु विद्यते।
अविद्यमाने स्वाभावे परभावो न विद्यते॥

माध्यमिकोंने कार्य कारणता, गति उत्पत्ति, आतमा आदिके विचारोंकी असम्भावना दिखाई है। और कारण भी बिना वस्तुके नहीं देखा जाता। जो वस्तु असत् है, वह सत् नहीं हो सकती, जैसे शशश्रृङ्ग।

कोई कारण शशश्रृङ्गको नहीं उत्पन्न कर सकता। जो वस्तु है ही नहीं उसका उत्पन्न होना ही क्या? एक ही वस्तु एक कालमें भाव और अभाव नहीं हो सकती। इसलिये कार्य कारणका विचार तर्क-विरुद्ध है। इस प्रकार उन लोगोंने गतिके विचारमें विरोध दिखलाया है। एक वस्तु एक ही कालमें दो स्थानोंमें नहीं हो सकती। यदि कोई वस्तु चलती है तो या तो वह चले हुए रास्ते पर (अर्थात् जो रास्ता तय हो चुका है) चलती है या जो रास्ता तय नहीं हुआ है उस पर चलती है। दोनों ही बातें ठीक नहीं हैं। चले हुए रास्ते पर चलना गति नहीं है, क्योंकि गतिका नाम आगे बढ़ना है और बिना चले हुए रास्ते पर होना असम्भव है। क्योंकि जो वस्तु जहां नहीं है वहां वह किस प्रकार हो सकती है। इस प्रकारके उभयतः पाश सभी विचारोंके

लिए बतलाये गए हैं। पाश्चात्य दर्शनोंके इतिहासमें आजकलके दार्शनिक ब्रेडले साहब और पूर्वकालके दार्शनिक जीनो ने भी इसी प्रकारकी प्रहेलिकाओं द्वारा गति आदि विचारोंकी असम्भावना दिखाई है। अस्तु ; शून्यवादके मतसे किसी विचारकी व्याख्या नहीं हो सकती। उसको सत् नहीं कह सकते। विज्ञान तकके विचारको दूषित बतलाया है। इनके मतसे जो पदार्थ है उसके लिये कुछ नहीं कहा जा सकता है। यह शून्यता अत्यन्ताभाव नहीं है। विशेषता अथवा कार्य-कारणसे उत्पन्न होनेको ही शून्यता कहा है, —

अप्रतीत्य समुत्पन्नो धर्मः कश्चिन्न विद्यते।
यस्मात्तस्मादशून्योहि धर्मः कश्चिन्न विद्यते॥

अर्थात् ऐसे कोई धर्म नहीं जो कार्य कारणसे उत्पन्न न हुए हों इसलिये कोई अशून्य धर्म नहीं है। वास्तवमें शून्यता निर्वाणकी तरह वर्णनके अयोग्य, नाश और उत्पत्तिसे परे और मन वाणीके अगोचर है।

निवृत्तमभिधातव्यं निवृत्ते चित्तगोचरे।
अनुत्पन्ना निरुद्धा हि निर्वाणमिव धर्मता॥

वास्तवमें ये लोग भी संसारकी अनित्यतासे घबराकर एक अचल सत्ताकी खोजमें थे। संसारकी चल सत्ता उनको सन्तुष्ट न कर सकी। संसारकी सत्ता सापेक्ष थी। निरपेक्ष सत्ताका उन लोगोंने अंगुलि निर्देश तो किया, किन्तु अपने क्षणिकवादके कारण उसका मुक्तकण्ठसे प्रतिपादन नहीं कर सके। इस बातके लिये श्रीशंकराचार्यकी आवश्यकता थी। उन्होंने सांसारिक सत्ताका खण्डन कर एक अचल सत्ताका प्रतिपादन किया जो तीनों कालोंमें सत् रहती है। बौद्ध धर्मके सम्प्रदाय उस धर्मकी तत्कालीन सजीवताके द्योतक हैं। उस कालमें बौद्धधर्मका प्रवाह आजकलके भारतीय विचारकी भांति स्थगित नहीं हो गया था।

छठे अध्यायका परिशिष्ट

प्रत्येकबुद्ध, बोधिसत्त्व और बुद्धकी कल्पना

हीनयान मत

[क—सभी जीव जन्म-मरणके बंधनमें बंधे हुए हैं। वे निम्नलिखित लोकोंमें से किसी एकमें रहते हैं। इन सभी लोकोंमें अल्प-विस्तर सुख-दुःख हैं—

१. नरक (१३६ प्रकारके)

२. प्रेतलोक

३. तिर्यक् लोक

४. असुर लोक

५. मनुष्य लोक

६. स्वर्ग (६ देवलोक)

ख—दुःखहेतु अविद्याके निरोधसे ही निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है। निम्नलिखित चार सीढ़ियोंको पार करके ही निर्वाण तक पहुँचा जा सकता है।

१. **सोतापन्न**—स्रोत आपन्न--ये मनुष्यसे नीची पश्वादि श्रेणीमें नहीं उत्पन्न होते।

२. **सकृदागामी**—जो साधनामें कुछ और अग्रसर हुए हैं, ये केवल एक बन्धनमें फिर आते हैं।

३. **अनागामी**—इस पदको पहुंचने पर काम-क्रोध आदि पंच बंधनोंसे मुक्त हो जाते हैं। ये फिरसे भवबंधनमें नहीं पड़ते।

४. **अर्हत्**—यह चौथी सीढ़ी है। यहां पहुंचनेवालेका समस्त बंधन छिन्न हो जाता है। ये जन्मान्तर स्मृति आदि सिद्धि पा जाते हैं।

ग—प्रत्येकबुद्ध—अर्हत्के ऊपरका पद प्रत्येक बुद्ध है। ये अपनी साधनासे दिव्य ज्ञान तो पा जाते हैं परन्तु उनकी सिद्धि अपने तक ही सीमित रहती है। ये जगत्के अन्यान्य जीवोंके उद्धारमें असमर्थ होते हैं। जब बुद्धदेव धरातल पर वर्तमान रहते हैं तब इनका आविर्भाव नहीं होता।

घ—बोधिसत्त्व—प्रत्येकबुद्धके ऊपरका पद बोधिसत्त्वोंका है। इनमें बुद्धत्वका बीज अंकुरित होता है। बुद्धदेव पूर्व जन्मोंमें बोधिसत्त्व रह चुके हैं।

ङ—बुद्ध—इन सबके ऊपर महिमाशाली बुद्धत्व पद है। गौतम बुद्धके पहले हीनयानियोंके मतसे कुल चौबीस बुद्ध हो चुके हैं। वर्तमान कल्पमें अब तक चार बुद्ध हो चुके हैं—ककुच्छन्द, कनकमुनि, काश्यप और गौतम। भविष्यमें मैत्रेय बुद्ध होंगे जो इस समय तुषित स्वर्गमें विराज रहे हैं।

महायान मत

महायानमें बुद्धोंकी संख्या २४ तक ही परिमित नहीं है। राजेन्द्रलाल मित्रने ललितविस्तरसे ५४ तथागतोंका नाम गिनाया था। हडसन साहबने ललितविस्तर तथा अन्यान्य महायानी ग्रन्थोंके आधार पर १४३ तथागतोंका नाम संग्रह किया है। महायानमें बोधिसत्त्वोंकी संख्या भी अनेक है। मैक

गबर्न नामक पंडितने अपनी पुस्तक 'इन्ट्रोडक्शन टु महायान' पृ० १०२ में लिखा है कि महायानी लोगोंका आरम्भमें विचार था कि यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति बुद्धत्व प्राप्त कर सकता है, फिर भी कुछ लोग केवल अर्हत्त्व पद, कुछ लोग केवल प्रत्येकबुद्धत्वका पद और कुछ लोग केवल बोधिसत्व पद पानेके प्रयासी होते हैं। लक्ष्य प्राप्त होने पर उनकी उन्नति रुक जाती है और वे हमेशाके लिये उसी रूपमें रह जाते हैं।

महायानमें भावी बुद्ध मैत्रेयके सिवा तीन और बोधिसत्व इस प्रकार हैं— मंजुश्री, पद्मपाणि अवलोकितेश्वर और वज्रपाणि। ये बहुत कुछ हिंदू त्रिदेव के समान हैं। विष्णुकी जैसे त्रिदेवमें बहुत पूजा-अर्चा है वैसे ही पद्म-पाणि अवलोकितेश्वरका महायानमें। मनुष्य बुद्धकी अशरीरी प्रकृति ध्यानी बुद्ध हैं। पांच ध्यानी बुद्ध हैं जो पांच अरूप लोकके अधिष्ठाता हैं। ये लोग अपने अपने स्वरूपसे एक-एक बोधिसत्व उत्पन्न करते हैं जो पर्यायक्रमसे रूपलोककी सृष्टि करते हैं। इस समय चतुर्थ बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वरका अधिकार चल रहा है। नीचे मनुष्य बुद्ध, अशरीरी प्रकृति ध्यानी बुद्ध और बोधिसत्वोंकी तालिका सत्येन्द्रनाथ ठाकुरके बौद्धधर्मके आधार पर दी जा रही है—

ध्यानी बुद्ध	बोधिसत्व	मनुष्यबुद्ध
१ विरोचन	१ सामन्तभद्र	१ ककुच्छन्द
२ अक्षोभ	२ वज्रपाणि	२ कनकमुनि
३ रत्नसंभव	३ रत्नपाणि	३ काश्यप
४ अमिताभ	४ अवलोकितेश्वर	४ गौतम
५ अमोघसिद्धि	५ विश्वपाणि	५ मैत्रेय]

७

संघके नियम

संघमें प्रवेश करनेके कुछ नियम यहां उद्धृत किये जाते हैं। सबसे पहला नियम यह था कि प्रवेशककी अवस्था १५ वर्षसे कम न हो। कोई भी प्रवेश-कर्ता माता-पिताकी आज्ञा एवम् सम्मतिके विरुद्ध संघमें नहीं लिया जा सकता था। संघमें प्रविष्ट होनेके पूर्व संघसे उसे प्रार्थना करनी पड़ती थी। एक भिक्षु उसके लिये तीन बार प्रस्ताव करता और संघ मौन द्वारा अपनी सम्मति देता है। इस प्रस्तावना एवम् स्वीकृतिके संस्कारको 'प्रव्रज्या' कहते हैं। प्रवेश कर्ताके केश मुड़वाये जाते थे, तथा तीन फटे काषाय वस्त्र धारण करने पड़ते थे वह भी इस प्रकारसे कि दाहिना कन्धा खुला रहे। यह सब कुछ हो जानेपर निम्नलिखित वाक्यों द्वारा तीन प्रकार शरण ग्रहण करनी पड़ती थी।

बुद्धं शरणं गच्छामि
धर्मं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि

इसके अतिरिक्त उसे दश शील पालन करनेका प्रण करना पड़ता था। प्रत्येक नवागत भिक्षुकको एक शिक्षकके [जिसे उपाज्झायो (उपाध्याय) कहते हैं] पास रहना पड़ता था। और इन दोनोंका सम्बन्ध पिता पुत्रके समान रहता था। शिष्यका कर्तव्य रहता था कि वह अपने गुरुकी सदा एकाग्र मनसे सेवा करता रहे, एवम् गुरुका भी कर्तव्य था कि शिष्यकी सहायता और रक्षा करता रहे। लूले, लंगड़े, कोढ़ी, क्षयी रोग ग्रस्त, दास, ऋणग्रस्त, अपराधी, राजसेवक इत्यादि संघमें प्रविष्ट होनेके अयोग्य ठहराये समझे जाते थे, उसके पश्चात् प्रव्रजितमें संघके कठिन नियमोंके पालन करनेकी शक्ति पायी जाती अर्थात् वह इन सब बातोंके पालन करनेका प्रमाण देता तभी उसे दुबारा दीक्षा देकर संघमें सम्मिलित किया जाता था। इस दूसरे बारकी दीक्षाको उपसम्पदा कहते थे। यहांपर कुछ नियम दिये जाते हैं।

विसुद्धि भागोंमें कुल पुत्रोंके लिये इन तेरह अंगोंकी अनुज्ञा दी है—

(१) **पांसुकूलिक**—अर्थात् छिन्न वस्त्रके टुकड़ोंसे पहिननेके लिये बनाना चाहिये। पांसुकूल चिथड़ेको कहते हैं। सभी भिक्षु इस नियमका पालन नहीं करते। जो आरण्यक भिक्षु कहलाते हैं वही इसका विशेष भावसे पालन करते हैं।

(२) **तेचीवरिक**—(त्रिचीवरिक) प्रत्येक भिक्षुको तीनसे अधिक परिधेय नहीं रखने चाहिये।

(३) **पिण्डपातिक**—अर्थात् भिक्षा द्वारा भोजन प्राप्त करना चाहिए। दरवाजे-दरवाजे भिक्षा मांगनेमें जो कुछ प्राप्त हो जाय उसीमें निर्वाह करना चाहिए।

(४) **सपदान चारिक**—(सापदान चर्या) एक द्वारसे दूसरे द्वारपर नियमपूर्वक भिक्षा मांगनी चाहिए।

(५) **एकासनिक**—एक ही आसनपर बैठकर भोजनादि करना चाहिये।

(६) **पत्तपिण्डिक**—(पात्र पिण्डक) एक पात्रसे आहार करना कहा गया है। इस नियमका पालन उत्तर प्रदेशीय बौद्धोंमें प्रचलित नहीं है।

(७) **खलुपच्छाभत्तिक**—भोजनकी सामग्री यदि अतिरिक्त जान पड़े तो उसे त्याग देना चाहिए, उसको फिरसे भक्षण करनेके लिये न रखना चाहिए।

(८) **आरञ्ञिक**— बनमें वास करनेको कहा गया है।

(९) **रुक्खमूलिक**—(वृक्षमूलिक) वृक्षके नीचे वास करना।

(१०) **अब्भोकासिक**—(अभ्रावकासिक) अनाच्छादित स्थानमें रहना।

(११) **सोसानिक**—(श्मशानिक) स्मशानमें अथवा उसके निकट बास करना।

(१२) **यथासन्थतिक**—जहां रात हो जाय वहीं ठहर जाना।

(१३) **नेसज्जिक**— (नैशैय्यक:) निद्रा कालमें भी शयन न कर बैठे रहना।

जो नियम ऊपर बतलाये गये हैं, वह सबके हेतु आवश्यक नही हैं।

भिक्षुओंको भिक्षाके हेतु उचित तथा नियत समयपर जाना चाहिए क्योंकि जो अनुचित समयपर जाता है वह बंधनके जालमें फँस जाता है। रूप, रस, गंध, स्पर्श यह मनुष्यमें मादकता उत्पन्न करते हैं। इनसे सम्बन्ध रखनेवाली इच्छाओंपर विजय प्राप्त करके भिक्षुको भिक्षाके लिये अवश्य बाहर जाना चाहिए। भिक्षा वृत्तिसे नियमित समयपर लौटकर भिक्षुको एकान्तमें अपने ऊपर विचार करना चाहिए। बाह्य विषयोंपर नहीं। यदि वह शिष्य वा अन्य भिक्षुसे वार्तालाप करे तो उसे धर्मकी श्रेष्ठतापर बातचीत करनी चाहिये। दूसरोंके सम्बन्धने कोई निन्दात्मक अथवा अनादर सूचक शब्दोंका प्रयोग

न करना चाहिये। कुछ लोग बाद विवादके हेतुसे ही तैयारियां करते हैं, ऐसे संकुचित हृदयवालोंका हम आदर नहीं करते। वे बंधन जालमें फंस जाते हैं, और वे अपना मन अपनेसे हटाकर वाद विवादमें प्रवृत्त कर देते हैं। भिक्षुको अपने धार्मिक शिक्षणके उपरान्त भोजन, मठ, विस्तर, आसन, स्नानके लिये जलकी खोज करनी चाहिये। परन्तु इन वस्तुओंमें आसक्ति न रखनी चाहिये। उसको पद्मपत्रपर जलविन्दुकी भांति निर्लिप्त रहना चाहिये।

वस्त्र धारण करनेका ढंग

भिक्षुगणोंके पहिननेके तीन ही वस्त्र होते हैं। वे इस प्रकार धारण किये जाते हैं।

(१) पहिला सब वस्त्रोंके पहिले पहिना जाता है।

(२) घुटनोंके नीचे तक लपेटा जाता है अर्थात् नाभि घुटनोंके नीचे आठ अंगुल तक रहता है।

(३) ऊपर पहिना जाता है। यह ढीला होता है और बांए कन्धेपर होकर लपेटा जाता है। जिससे दाहिना कन्धा खुला रहे।

दिनचर्या

प्रातःकाल उठकर शौचादि नित्य क्रियासे निवृत्त होकर संघके सभी लोग धार्मिक ग्रन्थोंका अध्ययन एवम् श्रवणादि करते थे।

यदि किसीको कुछ शंका रह जाती तो उसका निराकरण भी हो जाया करता था। यह कार्य अध्ययन, श्रवण, मननके पश्चात ही हुआ करता था। भोजनका समय प्रायः मध्याह्न कालके भीतर ही रहा करता था। भोजन केवल एक बार ही किया जाता था, दुबारा नहीं। भोजनोपरान्त कुछ समय आराम करनेको दिया जाता था। आराम करने पर फिर ध्यान तथा पठन एवं पाठन। वस्सके दिनोंमें प्रायः इसी प्रकारकी दिनचर्या रहती थी। वस्सके उप-

रान्त दिनचर्या बहुत ही साधारण रहती थी। इन दिनों मुख्य कार्य रहता था शिष्योंको पढ़ाना एवं आत्मोन्नतिके लिए विकारोंका दमन करनेके लिए, नाना प्रकारकी शारीरिक क्रियाएं। धार्मिक नित्यकर्म साधारण रीतिसे होता ही रहता था।

पातिमोक्ख (प्रातिमोक्ष)

हर पन्द्रहवें दिन भिक्षुओंको अपने चरित्र पर विचार करना पड़ता था। यह प्रथा अभी तक चली आ रही है। यह पूर्णमासी या द्वितीयाके दिन हुआ करता है। संघकी उपस्थितिमें पातिमोक्खका पाठ, जिसमें पापों और उनके प्रायश्चितोंका वर्णन रहता है, पढ़ा जाता है। फिर पूछा जाता है कि जिस किसीने इसके विरुद्ध आचरण किया हो वह अपना अपराध स्वीकार कर ले। यदि किसीने कोई अपराध किया है तो वह स्वीकार कर लेता है। और यदि नहीं तो मौन रहते हैं। तीन बार प्रश्न करने पर भी कोई उत्तर न दे तो समझ लिया जाता है कि संघ पवित्र है और किसीने कोई अपराध नहीं किया। यद्यपि भिक्षु लोग भिक्षा वृत्ति पर रहते थे तथापि उनको अपना जीवन बहुत नियमके साथ निरालस्य रूपमें व्यतीत करना पड़ता था। धम्म-पदमें कहा है—

तप्त अग्निकी शिखाकी भांति लोहेकी गोलीको निगल लेना अच्छा है, परन्तु जो अन्न पुरवासियोंसे श्रद्धा सहित प्राप्त हुआ है उसे संयम रहित होकर एवम् दुःशील होकर खाना उचित नहीं है।

वस्स (वर्षा)

चतुर्मासमें भिक्षुओंको एक ही स्थानमें रहनेकी आज्ञा है। वह इस कारणसे है कि वर्षाकालमें बाहर जानेमें कठिनाइयां पड़ती हैं। इस समयको भिक्षु लोग धार्मिक विचार मनन और उपदेशमें व्यतीत करते हैं। इन दिनों

भिक्षु लोग धार्मिक लोगोंके बनवाये हुए बिहारमें रहते हैं। यद्यपि बुद्धधर्ममें संघको नितान्त गरीबीमें रहनेका उपदेश दिया है, तथापि संघके लिये बिहार आदिमें रहना और उनका प्रबंध करना अवैध नहीं समझा जाता। यह रहनेके स्थान पांच प्रकारके माने गये हैं। बिहार, अद्धयोग, पासाद, हम्मि (हर्म्य) और गुहा। अद्धयोग स्वर्ण रंगका मकान बतलाया जाता है, पासाद एक लम्बे मकानको कहते हैं जिसमें दो या तीन मंजिलें होती हैं। हम्मि उस पासादको कहते हैं जिसमें सबसे ऊपरकी मंजिलमें एक रहनेका स्थान होता है, गुहा कन्दराको कहते हैं। बौद्धधर्मके प्रचारके साथ यह बिहार और चैत्य तमाम देशमें फैल गये थे। वर्षाकालके आरम्भमें ही भिक्षु लोग अपने लिए एक बिहार चुन लेते थे और वह उस कालको उसीमें व्यतीत करते थे।

८

संघका विस्तार

यद्यपि बुद्धदेवके जीवन कालमें ही सङ्घमें फूटके अंकुर प्रकट हो चुके थे तथापि वे बुद्धदेव तथा सङ्घके शुभचिन्तकोंके उद्योगसे बढ़ने नहीं पाये थे। बुद्धदेवके परिनिर्वाणके दो महीने पश्चात् समुद्र नामके भिक्षुने सङ्घमें शैथिल्य लानेके अर्थ बौद्धधर्मके विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया। वह और उसके साथी अनुशासनमें नहीं रहना चाहते थे। समुद्रका कथन था कि अब हम गौतमके शिक्षा जालसे मुक्त हो गये अब इच्छा पूर्वक विचरेगें। भगवान बुद्धके उपदेशोंको क्रमानुकूल इकट्ठा करनेके लिए पहली महासभा या सङ्गीति महाराज अजातशत्रुके राज्यकालमें राजगृहके पास वेभार नामके गुफाके सामने महाकश्यपके सभापतित्वमें हुई। विनय की शिक्षाका क्रमानुकूल पाठ निश्चित करनेके लिए विनयधर कहे जानेवाले उपालि नामके भिक्षुको धर्मासनपर बिठलाया गया उससे प्रश्न पूँछे जाते थे। वह उनका उत्तर देते जाते थे और उस उत्तरको पांच सौ भिक्षुगण दुहराते थे। इस प्रकार पूरा विनय शास्त्र समाप्त हुआ उसको पाराजिककण्ड, पाचित्तियकण्ड, महावग्ग चुल्लवग्ग और परिवार नामके पांच काण्डोंमें विभक्त किया।

सूत्र पाठके लिए धर्मधर कहे जानेवाले भिक्षु आनन्दको धर्मासनपर बैठाया गया। विनयकी भांति सूत्रके सम्बन्धमें प्रश्न किये गये उत्तरोंकी भिक्षुओंने प्रवृत्तिकी और सूत्रका पाठ निश्चित होकर सम्पूर्ण शास्त्रको पांच निकायोंमें विभक्त किया गया। वे इस प्रकार है (१) दीर्घ निकाय, मध्यम निकाय, अङ्गोत्तर निकाय, संयुक्त निकाय और क्षुद्रक निकाय। इस अन्तिम निकायमें पन्द्रह ग्रंथ हैं। धम्मपद और जातक इसीमें हैं।

ईसा पूर्व ३६२ सन्में बुद्ध निर्वाणके प्रायः सौ वर्ष बाद अशोक राज्य करते थे। द्वितीय संगीति वेशालीके समीप बालुकाराममें बैठी इसमें धर्म अर्थात् सूत्रकी और विनयकी द्वितीयावृत्ति हुई। इसमें ७०० भिक्षु शामिल थे। इसके बुलानेका मुख्य कारण यह था कि वृजि भिक्षुगण सुभीतेके निमित्त कुछ शैथिल्य चाहते थे। वे चाहते थे कि वे अपने पास नमक रख सकें (भिक्षुओं को किसी चीजके संग्रह करनेकी मनाही थी) वे लोग यह भी चाहते थे कि मठा मध्यान्हके पीछे भी दिया जा सके। ऐसी-ऐसी दस बाते थीं।

सन् ३३५ ईसा पूर्वमें जब कि महाराज अशोक राज्य करते थे मोगली पुत्र १००० भिक्षुओंने पटनाके समीप अशोकाराममें तीसरी संगीति की।

ईसा पूर्व सन् २१३में अशोक महाराजके पुत्र महा महिन्द (महेन्द्र) ने लङ्का द्वीपके महाराजाधिराज दुट्ठगामणीकी सहायतासे त्रिपिटक लिखवाया था।

महाराज अशोकके समयमें ही बौद्धधर्मका प्रचार लङ्का आदि द्वीपोंमें हुआ।

इस इतिहासके सम्बन्धमें महाराज बुद्धके जन्मसे कुछ पूर्वकी तथा उनके निर्वाणोपरान्त महाराज अशोकतककी राजनीतिक परिस्थिति बतला देना असङ्गत न होगा।

विष्णुपुराणसे ज्ञात होता है कि कुरु साम्राज्य हस्तिनापुरसे उठकर कौशाम्बी आगया था। कौरवोंकी प्रधानताके पश्चात् इक्ष्वाकुवंशी कोशल देशके

राजाओंकी प्रधानता रही। कोशल देशकी राजधानी अयोध्यासे उठकर स्नावस्ती (सहेत महेत) हो गई थी। गंगाके उत्तरमें लिच्छिवि लोगोंकी राजधानी वैशाली थी। इन लोगोंका राज्य सभा द्वारा चलता था। सभाका अधिपति नायक कहलाता था। नायकका चुनाव होता था। उपरोक्त वृज्जि भिक्षु इसी राज्यके थे।

कोशल राज्य तथा मगध राज्यमें, जिसकी राजधानी राजगृह थी, विशेष प्रतिद्वन्दिता थी। कपिलवस्तु शाक्यों की राजधानी थी। बुद्धदेव शाक्य वंशीय थे। शाक्य लोग कोशल राज्यके आधिपत्यमें थे, किन्तु कोशल और मगध राज्यकी प्रतिद्वन्दिताके कारण यह आधिपत्य शिथिल-सा हो गया था।

बुद्धदेवके समयमें मगधने अपनी प्रधानता स्थापित कर ली थी। बुद्धदेव के समयमें मगधके राजा शिशुनागके वंशज बिम्बसार राज्य करते थे। बिम्बसारके लिये कहा जाता है कि इनको इनके लड़के अजातशत्रुने देवदत्तकी प्रेरणासे राज्यच्युत करके मार डाला था और स्वयं राज्य करने लग गये थे। इस सम्बन्धमें कुछ पाश्चात्य पण्डितोंका मत है कि यह बात ठीक नहीं मालूम होती। इस बातको बौद्धोंने देवदत्तकी बुराई बढ़ाकर दिखलानेके लिये कर दी है। लेकिन यह समझमें नहीं आता कि वे क्यों झूठ बोलते। अस्तु, जो कुछ भी हो, बिम्बसारके पश्चात अजातशत्रु राजा हुए। बिम्बसारके लिए कहा जाता है कि वह जैन धर्मावलम्बी थे। बिम्बसारने प्रायः २८ वर्ष राज्य किया। इनका राज्य काल ५८२ ईसा पूर्वसे ५५४ ई० पू० तक था। अजातशत्रुने सोनपाटिल नामका एक किला बनवाया था। इसीके चारों ओर पाटलिपुत्र नगर, जो पीछेसे मगधकी राजधानी हो गया था, बस गया। अजातशत्रुका सम्बन्ध कोशल तथा लिच्छवि राज्योंसे था। इनकी माता लिच्छवि जातिकी थीं और इनकी पत्नी कोशल राज्यकी थीं। इन्होंने दो

राज्योंको पराजित कर अपने अधीन कर लिया था। बुद्धदेवकी मृत्यु इन्हीं के समयमें हुई थी।

बिम्बसारने भी २७, २८ वर्ष तक राज्य किया। ५५४ ई० पू० में अजात शत्रुने राज्य ग्रहण किया और ५२७ में इसकी मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् दो और राजा हुए। उनके नाम दर्शक और उदय थे। इनके पश्चात् दो और राजा नन्दवर्धन तथा महानन्दिन हुए। इनको कुछ लोग शिशुनागके के वंशमें गिनते हैं तथा कोई कोई नन्द वंशमें। उदयने कुसुमपुर नामक नगर बनवाया। प्रायः उसी समय जब कि वैशालीमें सभा हो रही थी नन्दवंश ने शिशुनागके वंशको पराजित कर मगधमें अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इन लोगोंकी उत्पत्ति शूद्र जातिकी मातासे बतलाई जाती है। इन लोगोंका प्रायः ८०, ९० वर्ष राज्य रहा। ये लोग ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके विरुद्ध थे। इसी समय ३२७ ई० पू० में सिकन्दरका आक्रमण हुआ। चन्द्रगुप्तने अन्तिम समयमें बगावत की थी। पहिले तो हार कर चन्द्रगुप्त सिकन्दरके साथ रहा। तब सिकन्दरने उसके औद्धत्यसे अप्रसन्न होकर उसे निकाल दिया। चन्द्रगुप्तने फिर चाणक्यकी सहायतासे नन्दको मरवा डाला एवं स्वयं राज्य करने लगा।

चन्द्रगुप्तने सिकन्दरकी मृत्युके पश्चात् यूनानियोंको भी भारतवर्षसे हटा दिया था। इसने भारतवर्षमें अपना साम्राज्य स्थापित कर दिया था। यूनानी यात्री मेगस्थनीज़ इनके ही समयमें आया था। मेगस्थनीज़के लेखोंमें यहाँका बहुत कुछ हाल मिलता है। चन्द्रगुप्तकी माताका नाम मुरा था। इसीसे इसका वंश मौर्य्यवंशके नामसे प्रख्यात हुआ। इनके लिये कहा जाता है कि ये जैन-धर्मावलम्बी थे; और उन्होंने भद्रवाहु जैनके कहनेसे राज्यका त्याग कर दिया था और दक्षिणमें जाकर आत्महत्या कर ली थी। चन्द्रगुप्तके पुत्र बिन्दुसार

हुए। इनका दूसरा नाम अमित्रघात (शत्रुओंको मारनेवाला) था। महाराज अशोक इन्हींके पुत्र थे। इन्होंने सन् २७३ ई० पू० राज्य शासन हाथमें लिया था। पहले तो इन्होंने अपने राज्यको फैलानेका उद्योग किया। यह अपनी प्रचण्डताके कारण प्रचण्ड अशोक भी कहलाने लगे थे। कलिङ्ग देश पर जो इन्होंने विजय प्राप्त की, उसका इनके मन पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। युद्धके हत्याकांडने इनका मन युद्धसे हटा दिया और इन्होंने दया-प्रधान बुद्धधर्मकी शरण ली। इसके उपरान्त यह पियदसी या प्रियदर्शीके नामसे विख्यात होगये। प्रियदर्शी तथा अशोकका प्रायः एक ही अर्थ है। लोगोंको सन्देह था कि प्रियदर्शी और अशोक पृथक्-पृथक् व्यक्ति हैं, किन्तु पीछे निजाम राज्यान्तर्गत मास्की स्थानसे प्राप्त शिलालेखमें अशोकके नाम आ जानेसे यह सन्देह दूर होगया।

अब हम सङ्घके इतिहास पर आते हैं, तीसरी धर्म-महासभाके पश्चात् बुद्धधर्मके देशान्तरोंमें प्रचारका उद्योग किया गया। अशोकने बुद्धधर्मके प्रचार-में जितनी ख्याति पाई है उतनी और किसीने नहीं। इस सम्बन्धमें रिस डेविसने कोपिन साहब (Mr, kopen) का एक अवतरण दिया है। वह इस प्रकारसे है—

"If a man's fame can be measured by the number of hearts who severe his memory, by the number of lips who have mentioned and still mention him with honour Ashoka is more famous than Charlemazgne or Cezar."

यदि किसी मनुष्यकी ख्यातिका पता उसके स्मरण करनेवालों एवं आदरसे नाम लेनेवालोंसे लगाया जा सकता है तो अशोक शारलीमेन अथवा सीजर से अधिक विख्यात थे।

जिन-जिन स्थानोंमें बौद्ध-प्रचारक भेजे गये थे उनमें लङ्काद्वीप विशेष महत्व रखता है। वहाँ पर बुद्धदेवका तीन बार जाना कहा जाता है। इसके लिये कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। किन्तु इसका उल्लेख महावंशमें मिलता है। बुद्धदेवका जो पहली बार लङ्का जाना हुआ उसमें उन्होंने लङ्काको अपनी दैवी शक्ति द्वारा यक्षोंसे खाली कर दिया था जिससे कि भावी बौद्धधर्मके प्रचारमें कोई बाधा न हो। कहा जाता है कि सुमनकूट पर जिसको कि अंग्रेजीमें Adam's peak कहते हैं बुद्धदेवने लङ्का जाते समय अपना पद अंकित कर दिया था और वह पदचिह्न अब भी वर्तमान है। जब अशोकके पुत्र महेन्द्र लङ्का गये थे, उस समय वहांपर महाराज तिस्स (तिष्य) का राज्य था। महाराज तिष्य तथा महाराज अशोकमें मैत्रीभाव था। अशोककी प्रशस्तियोंसे पता चलता है कि उनका साम्राज्य ताम्बपन्नी (ताम्रपर्णी) अर्थात् लङ्का तक था। लङ्काके राजा तिष्यने महाराज अशोकके पास कुछ रत्न, मुक्ता और शङ्ख उपहारस्वरूप दूतों द्वारा भेजे थे। अशोकने इन दूतोंका आदर कर उनके हाथ तिष्यके द्वितीय अभिषेकार्थ सामग्री भेजी और ज़बानी यह कहला भेजा कि उन्होंने बौद्धधर्मकी शरण ली है और वह अपने मित्रसे भी यही आशा रखते हैं।

तिस्स भी अपनेको 'देवानां प्रिय' कहते थे। इनके द्वितीय अभिषेकके पश्चात् ही राजकुमार महामहिन्द (महेन्द्र) जो कि सङ्घमें प्रविष्ट हो चुके थे लङ्का गये। उस समय जब कि महेन्द्र लङ्का पहुँचे थे राजा तिस्स आखेटको गये हुए थे। तिस्स अशोकके सम्वादसे बुद्धधर्ममें सम्मिलित होनेके अर्थ तैयार तो हो ही गये थे, महेन्द्रके साथ आये हुए भिक्षुओंको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और तुरन्त ही बौद्धधर्ममें दीक्षित हो गये। तिस्सने महेन्द्र तथा उनके साथियोंके लिये एक उत्तम विहार अनुराधपुरके पास एक पहाड़ीके

शिखरपर बनवाया, वह अब भी वर्तमान है और उसमें एक पत्थरकी चौकी भी है जिसपर महेन्द्र विश्राम किया करते थे। महेन्द्रकी प्रेरणासे महाराज तिस्सने थूपाराम नामका स्तूप भी बनवाया जिसमें बुद्धदेवका धातु हड्डी जिसे हसली कहते हैं रक्खा हुआ है, ऐसा कहा जाता है। महेन्द्र अपने साथ पाटलीपुत्रकी महासभा द्वारा निश्चित किये हुए त्रिपिटक और उनकी कुछ टीकाएं भी लाये थे, उनका उन्होंने सिंहली भाषामें अनुवाद किया था। त्रिपिटक वहां स्थायी रूपसे बने रहे। तिस्सकी मृत्युके अनन्तर लङ्कामें द्रविड़ों ने दो बार आक्रमण किया और वहांपर उन्होंने अपना आधिपत्य भी जमा लिया था। यह बात ८८ ई० पूर्व की है। इन लोगोंको वट्टगामिनीने लङ्कासे हटाया था। वट्टागामिनीने अभय नामका एक बड़ा भारी दागोबर (विहार) बनवाया। यह २५० फुट ऊँचा बतलाया जाता है। वट्टगामनीके समयमें ही त्रिपिटक लेख बद्ध किये गये थे। इसके पूर्व यह महाविहारके भिक्षुओंकी स्मृति हीमें रहे। इसके पश्चात् लङ्काके धार्मिक इतिहासमें २००, ३०० वर्ष तक कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई। सन ३०४ ईस्वीमें जब कि श्रीमेघवण्ण राज्य करते थे कलिङ्ग देशसे एक राजकुमारी अपने साथ एक बुद्धदेवका दाँत लाई थी। इसकी वहीं पूजा होने लगी। फाहियान, अपने वर्णनोंमें लङ्काके बोधितरु तथा उस विहारका जिसमें कि बुद्धदेवका दाँत स्थापित था, उल्लेख करते हैं। लङ्काके धार्मिक इतिहासमें बुद्धघोषका उस द्वीपमें जाना विशेष महत्त्व रखता है। यह ४२० ईस्वी सन्‌की बात कही जाती है। यह जातिके ब्राह्मण थे और मगधके निवासी बतलाये जाते हैं। इन्हें लोग लङ्कामें बुद्धधर्म के द्वितीय जन्मदाता कहते हैं। इनका स्वर बुद्धदेवका-सा था इससे इनका नाम बुद्धघोष पड़ा। बुद्धघोषका लङ्कामें जानेका मुख्य कारण यह था कि वे वहांसे त्रिपिटककी टीकाएं जो कि अट्ठकथाके नामसे प्रसिद्ध हैं, पालीमें अनुवाद

कर भारतवर्षमें ले आवें। यह महात्मा लंकामें महानन्द राजाके समयमें गये थे। जब ये महाविहारमें पहुँचे तब उन्होंने वहांके स्थविरोंसे अपना उद्देश्य प्रकट किया और विहारकी धर्मपुस्तकोंके देखनेके लिए प्रार्थना की। विहारके स्थाविरोंने बुद्धघाषसे अपनी योग्यता प्रमाणित करनेको कहा। उन्होंने दो गाथाओंके आधारपर एक उत्तम पुस्तक जो कि विसुद्धि मग्गो (विशुद्धि मार्ग) के नामसे प्रख्यात है रचकर दिखलाई। उसे देखकर स्थाविर लोग बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि स्वयं मैत्रेय बुद्धका आविर्भाव हुआ है। उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे बुद्धघोषको सब धार्मिक ग्रन्थोंके अवलोकन करनेकी आज्ञा दी और वहांपर रहकर बुद्धघोषने इस कथाका पाली भाषामें अनुवाद किया। लङ्कामें महेन्द्रके आनेके थोड़े ही दिनों पश्चात् तिस्सकी साली अतुला और उसके साथकी ५०० संगिनियोंने भी बुद्ध-संघमें प्रवेश करनेका सङ्कल्प किया। महिन्दने स्वयं उनको दीक्षा न देकर अपनी भगिनी संघमित्ताके बुलवानेका प्रस्ताव किया। तिस्सके भतीजे अरित्थ भारतवर्षमें दो वस्तुओं—संघमित्ता तथा बोधिवृक्षकी शाखा—के लिए भेजे गये। कहा जाता है कि दैवीशक्तिसे बोधितरुकी एक शाखा स्वयं मूल वृक्षसे निकलकर सुवर्णके एक बड़े पात्रमें स्थापित हो गई। संघमित्ता तथा बोधितरुकी शाखा दोनों यथा समय लङ्कामें पहुंच गईं। संघमित्ताने स्त्रियोंको दीक्षा दी और बोधितरुकी शाखा अनुराध-पुरमें स्थापित कर दी गई। यह वृक्ष अभीतक वर्त्तमान है। कुछ लोग तो इसमें सन्देह करते हैं कि यह बोधितरुकी शाखासे जमा हुआ वृक्ष है और कुछ लोग मानते हैं कि वास्तवमें उसी तरुकी शाखासे उत्पन्न है। रिस डेविसने इसके सम्बन्धमें एक अवतरण दिया है। वह इस प्रकारसे है :—

"The Bodhi Tree of Anuradhpur, is in all probability, the oldest historical tree in the world. It was planted 288 years Before Christ."

अनुराधपुरका बोधितरु सम्भवतः संसारके ऐतिहासिक वृक्षोंमें सबसे पुराना है। यह ईसासे २८८ वर्ष पूर्वका लगाया हुआ है। राइस डेविसके मतसे यह वृक्ष २४५ वर्ष पूर्वका है। इस हिसाबसे यह वृक्ष २१७९ वर्षका पुराना है।

पाटलीपुत्रकी महासभासे जो और और प्रचारक लोग गये थे उनकी कुछ विशेष वार्ता ज्ञात नहीं हुई, किन्तु उन्होंने अपना कार्य्य थोड़ी बहुत सफलताके साथ अवश्य किया, क्योंकि बुद्ध धर्मका प्रचार, जिन देशोंमें वे लोग गये थे, अवश्य हुआ। ब्रह्मामें बुद्ध धर्मका प्रचार सन् ४२५ ई०में हुआ। यहां भी बुद्धघोषने बुद्धधर्मकी नींव डाली। लङ्काके बाद यह महात्मा वहीं गये थे। स्याममें प्रायः ६३८ सन् ईस्वीमें बुद्धधर्मका प्रचार हुआ था। उसी समय जावामें भी बुद्धधर्मका प्रचार हुआ और वहांसे सुमात्रामें भी। इन देशों-में बुद्धधर्मको दक्षिणी बुद्धधर्म कहने लगे ।

महाराज अशोकके समयमें धर्म प्रचारक गण पश्चिम एवं उत्तरको भी गये हुए थे। वहां भी बुद्धधर्म स्थापित हो गया था। कहा जाता है कि ईसा पूर्व २०० वर्षमें पाटलिपुत्रके राजा पुष्यमित्रने बौद्धोंको सताया था। तदनन्तर पुष्यमित्रके पुत्र अग्निमित्रको प्रायः १५० वर्ष ईसा पूर्व यूनानियोंने (Memonoler) के नायकत्वमें हराया था। मिलिन्दने अपना राज्य गंगातक विस्तृत किया था। यूनानियोंसे बुद्ध धर्मकी कोई क्षति नहीं हुई, क्योंकि उत्तरीय बुद्ध धर्मके प्रवर्तक नागसेनने मालिन्दको बौद्धधर्मावलम्बी बना लिया था और उनके वार्तालाप मलिन्दपञ्हो नामक पुस्तक रूपमें वर्त्त-मान हैं। ईसा संवत्‌के आरम्भमें यूनानियोंको तूरानियोंने हरा दिया था। कहा जाता है कि कनिष्कने सन् ७८ ईस्वीमें अपना राज्य आरम्भ किया। काश्मीर का राज्य काबुल, यारकन्द, काश्मीर, पञ्जाब, गुजरात, सिन्ध, राजपूताना और

आगरातक विस्तृत था। वह बौद्धोंके उत्तरीय सम्प्रदायके अनुयायी थे ; और इनके समयमें चौथी धर्ममहासभा हुई थी जिसमें ५०० भिक्षु सम्मिलित हुए थे। इन्होंने त्रिपिटकका पाठ निश्चित नहीं किया था, किन्तु तीन स्वतन्त्र टीकाएं लिखीं। सूत्रपिटकपर उपदेश नामकी टीका लिखी गई। विनयपर विनय पिटक शास्त्र और अभिधर्मपर अभिधर्म पिटक शास्त्र नामकी टीकाएं लिखी गईं। चीनी यात्री ह्वेन्त्सांगने अभिधर्म पिटक शास्त्रका काश्मीरमें अभ्यास किया था। इस प्रकार उत्तरीय सम्प्रदायका आधार त्रिपिटकोंसे बहुत कुछ हट गया था और हटता ही चला गया। अश्वघोष, जिन्होंने कि संस्कृतमें बुद्धदेवका जीवनचरित्र लिखा था, काश्मीरकी राज्यसभामें रहते थे। चीनमें बुद्ध धर्मका प्रचार दूसरी शताब्दी ई०पू०में हुआ था। प्रायः सन् १२२ ईस्वीमें चीनी सम्राट् बूटीने अपने सेनापति हूकूपिंकूको तुर्किस्तानकी ओरके कुछ वर्बर जातियोंको दण्ड देनेके लिए भेजा था। उस समय यह सेनापति महाशय यारकन्दसे एक बुद्धदेवकी सुवर्ण प्रतिमा लाये थे। यही चीनमें बुद्ध-धर्मका प्रवेश था।

सन् ६५० ई० में चीनी सम्राट मिन्टीने स्वप्नमें देखा कि एक सुवर्णमय देवदूतने उड़कर उसके राजभवनमें प्रवेश किया। यह भी कहा जाता है कि बुद्धदेवने स्वप्नमें आदेश दिया कि तुम अपने राज्यमें इस धर्मकी पुस्तकें और मूर्तियां मंगाओ। इस स्वप्नकी प्रेरणासे चीनी सम्राट्ने भारतवर्षसे पुस्तकें और बुद्धपुजारियोंको लानेके लिये १८ मनुष्य भेजे। यह वृजि देशमें आये और कुछ वर्षोंतक रहकर बुद्धधर्मके ग्रन्थ एवं मूर्तियाँ ले गये। इनके साथ दो शिक्षक—सद्धर्म और काश्यप मातंग भी गये थे। इन लोगोंने चीनमें रहकर बौद्ध ग्रन्थोंका चीनी भाषामें अनुवाद किया। उस समय भारतवर्षसे भिक्षुगण चीनमें आते जाते रहे। चीनी यात्रियोंमें तीन यात्री प्रमुख

हैं। (१) फाहियान सन् ४०० ईस्वीमें (२) सुंगयुन ५१८ सन् ईस्वीमें (३) ह्वेन्त्सांग ५१८ ईस्वीमें।

चीनसे बुद्ध धर्म सन् ३२८ में कोरिया पहुंचा और वहांसे सन् ५५२ में कोचीन, चीन, और फारमूसामें पहुंचा। सन् चौथी तथा पांचवी शताब्दीमें बौद्ध धर्म मंगोलियामें फैल गया। नेपालमें बुद्ध धर्म छठवीं शताब्दी ईसाके बाद पहुंचा। इसी समय तिब्बतमें भी भारतवर्षसे बुद्ध धर्म पहुंच गया।

९

तीर्थ स्थान

बौद्धोंके मुख्य तीर्थस्थान बुद्धदेवके जीवनसे सम्बन्ध रखते हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) बुद्धदेवका जन्म स्थान—कपिलवस्तु, (२) बुद्ध भगवान् के बुद्धत्व प्राप्त करनेका स्थान—बुद्ध गया, (३) उनके धर्मचक्र पवर्तनका स्थान—सारनाथ और (४) उनके परिनिर्वाणका स्थान—कुशीनगर। इनके अतिरिक्त और भी बहुतसे पवित्र बौद्ध-स्थान हैं जिनकी चर्चा आगे की जा रही है। इन तीर्थ स्थानोंमें कई भग्नप्राय और विलुप्त हो चुके थे। आधुनिक प्रयत्नोंसे कुछेकका उद्धार हुआ है, कुछेकका उद्धार अब भी पूरी तरहसे नहीं हो सका है।

१—कपिलवस्तु

यह स्थान जिला बस्तीमें, फैजाबादसे बीस मीलकी दूरीपर उत्तर पश्चिम में अवस्थित है। बस्तीसे बारह मील उत्तर पश्चिमकी ओर तथा काशीसे १२० मीलपर पड़ता है। [बौद्ध ग्रन्थोंसे जान पड़ता है कि बुद्धदेवकी जीवितावस्थामें ही कपिलवस्तु ध्वस्त हो गया था। प्रसिद्ध है कि कोशलके

राजा प्रसेनजित्के पुत्र और उत्तराधिकारी विरुधकने इस राज्यको उखाड़ फेंका था। विरुधक स्वयं बुद्ध भक्त थे। शाक्योंके साथ इनके विरोधकी कहानी इस प्रकार है। कोशलराज प्रसेनजित्की भगिनी मगधराज बिम्बसारको व्याही गई थीं। दहेजमें मगधराजको श्रावस्तीका इलाका दिया गया था। जब बिम्बसारके पुत्र अजातशत्रुने पितृ-वधके पश्चात् राजगद्दीपर अधिकार किया तो रुष्ट होकर प्रसेनजितने वह इलाका लौटा लिया। इसपर घोर युद्ध हुआ और प्रसेनजित् पराजित हुए। जब कोशलराज हारकर अपनी राजधानीको लौट रहे थे तो रास्तेमें एक मालिनके रूप गुणपर मुग्ध हुए। उसे रानी बनाया। इसीसे उनके एक पुत्र हुआ। यही पुत्र विरुधक था।

विरुधककी माता मालिन व्याहके पहले ही बुद्धदेवकी भक्त हो चुकी थी। बुद्धदेव एकबार श्रावस्तीमें पांच सौ भिक्षुओं सहित पधारे थे उस समय भिक्षा में इस मालिनने बुद्धदेवको स्वादिष्ट अन्न दिया था। भगवान्ने उसी समय राजमाता होनेका आशीर्वाद दिया था। समय पाकर आशीर्वाद फला। विरुधक राजा हो गया। प्रसेनजित्के और कोई पुत्र नहीं था। एक बार उन्होंने शाक्योंसे सम्बन्ध करना चाहा था। परन्तु शाक्यवंशीय लोगोंको अपनी कुलीनताका अभिमान बहुत अधिक था। उन्होंने अपनी कन्या न देकर दासी पुत्रीके साथ प्रसेनजितका विवाह कराके धोखा दिया था। बड़े होनेपर विरुधकको यह बात मालूम हुई और इस अपमानका बदला लेनेके लिये उन्होंने कपिलवस्तुपर चढ़ाई करके उसे ध्वंस कर दिया। बुद्धदेवके संसार त्याग करनेके बाद कपिलवस्तुके राजपरिवारके सभी स्तम्भ धीरे-धीरे संसार-त्यागी हो चुके थे। अन्तिम उत्तराधिकारी गौतमके पुत्र राहुल भी भिक्षु हो चुके थे। जान पड़ता है, विरुधकको इस शक्तिशाली राज्यको जीतनेमें बहुत परेशानी नहीं उठानी पड़ी होगी। उस समय बुद्ध निर्वाणके बाद केवल तीन ही वर्ष बीते थे।

जिस स्थानको बुद्धदेवको जन्म देनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, वह इतनी जल्दी विध्वस्त हो गया। बहुत दिनों तक इस स्थानका नाम ही शेष रह गया था। चीनी यात्री फाहियान और हुएन्त्सांग आदिने भी इस नगरका भग्नावशेष ही देखा था। अब पुरातत्त्वज्ञ पण्डितोंके परिश्रमसे यह स्थान आविष्कृत हुआ है। इसका स्थान-निर्णय अशोकके एक स्तम्भ लेखके आधारपर किया गया है। अशोकके इस स्तम्भका भी पता हुएन्त्सांगके लेखसे चला था। इस प्रकार इस महान् तीर्थका पता लग सका है।]

२—बुद्ध गया

यहीं भगवानने बुद्धत्व लाभ किया था। यह गया नगरसे ६ मीलकी दूरी पर और पटनासे ६० मीलकी दूरीपर है। [राजा अशोकने यहां एक मन्दिर बनवाया था। इसी स्थानपर बोधि वृक्षके नीचे तपस्या करके भगवान्‌को बोध प्राप्त हुआ था। कहते हैं उस वृक्षकी एक शाखा महेन्द्रकी बहन सङ्घमित्रा सिंहलमें ले गई थीं। वह वहां विशाल वृक्षके रूपमें बढ़ा। इस समय भी बुद्ध गयामें एक बोधि वृक्ष है, जिसके सम्बन्धमें पण्डितोंका विचार है कि यह सन् ईस्वीकी तीसरी शताब्दीमें लगाया गया था।]

३—सारनाथ

[इसिपतन (ऋषिपत्तन) सारनाथका पुराना नाम है। यहां बुद्धदेवने अपना धर्मचक्र पहले प्रवर्तित किया था। बुद्धदेवकी जीवितावस्थामें ही यहां एक विहार निर्मित हुआ था। इस स्थानपर बौद्धोंके अनेक देवालयादि थे। खुदाई करनेपर देखा गया है कि इसके चारों ओर बहुतसा राख पाया गया है। किसी-किसीने यह अनुमान किया है कि किसी बौद्धद्वेषी राजाने इन्हें जला दिया होगा। यह अनुमान कहांतक ठीक है, कहा नहीं जा सकता। यहां अशोकके समय एक स्तूप निर्मित हुआ था। कनिंगहमने इसके पास ही एक

पत्थर खण्ड आविष्कार किया है जिसपर बुद्धदेवका जन्म, बुद्धत्व लाभ, धर्म प्रवर्तन और निर्वाण अङ्कित है।] यह काशीसे पूर्वकी ओर सटा ही हुआ है। बी० एन० डबल्यू रेलवेका स्टेशन भी यहां है। हाल हीमें यहां 'मूलगन्ध कुटी विहार' नामक एक विहार बन गया है।

४—कुशीनगर और पावा

कुशीनगरको कुसीनारा भी कहते थे। आजकल इसे कसया कहते हैं। गोरखपुर जिलेमें बी० एन्० डब्ल्यू रेलवेके देवरिया स्टेशनके पास है। [कुशीनगर और पावा ये मल्ल नामक क्षत्रियोंके प्रधान नगर थे। मल्ल लोग वृजियोंकी ही तरह स्वाधीन राज्यतन्त्रवाले थे। यह पहले ही कहा गया है कि बुद्धदेव अपने अन्तिम कालमें मल्लराज्यमें ही चुन्द नामक लुहारका दिया हुआ आहार ग्रहण किया था। उसी आहारको ग्रहण करके बुद्धदेव कुशीनगर गये और वहीं उनका निर्वाण हुआ। उनके ही आदेशसे आनन्दने भगवानके निर्वाणका समाचार मल्लोंको दिया, जिन्होंने शोकाभिभूत होकर यह सम्वाद सुना। बड़े समारोहके साथ ये लोग तथागतके शवकी पूजा सात दिनतक करते रहे। इसके बाद मुकुटबन्धन नामक चैत्यमें अन्त्येष्टि क्रिया हुई। बुद्धदेवके अस्थि-खण्डोंके आठ भागोंमें वितरण किये जानेका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। पावाके मल्लोंने भी एक भाग पाया था। इन आठ अस्थि भागोंको भिन्न-भिन्न क्षत्रिय राजा लोग ले गये थे और उनपर आठ स्तूप बनाये गये थे। ये आठ स्तूप इन स्थानोंपर बने थे—राजगृह, वैशाली, कपिलवस्तु, अल्लकप्प, रामग्राम, वेष्टदाप, पावा, और कुशीनगर। हुएन्त्सांग आदिने इसका भग्नावशेष देखा था।]

५—राजगृह

राजा बिम्बसार और उनके पुत्र अजातशत्रुकी राजधानी यहीं थी। बुद्ध-

देव बुद्धत्व प्राप्त करनेके पहले यहीं आलारकलाम और रुद्रक नामक आचार्योंसे शिक्षा पाये थे। [यद्यपि यह शिक्षा उनका सन्तोष-साधन न कर सकी थी, तथापि वह अपना प्रभाव तो छोड़ ही गई होगी। इस स्थानके गृध्रकूट पर्वत और वेणीवन भगवानके प्रिय आवास स्थान थे। यहीं देवदत्तने गुरुके विरुद्ध षड्यन्त्र किया था। अन्तिम समयमें जब बुद्ध वेणुवनसे राजगृहके गृध्रकूट पर्वतपर लौटे तब राजा अजातशत्रु वृजियोंपर विजय पानेके प्रयत्न में था। अपने अमात्य वर्षकारको उसने बुद्धदेवके पास अपनी सफलताके विषयमें पूछनेको भेजा था। भगवान्‌ने कहा था कि जबतक वृजियोंमें एकता है, जब तक वे धर्मपालनमें दृढ़ हैं, जबतक उनकी कुमारियाँ और कुलस्त्रियाँ पूजित हैं, जबतक वे अहितोंकी रक्षा और पालन करेंगे तबतक उनका विनाश नहीं हो सकता। इसीके पास सप्तपर्णी नामकी गुहा है जहां प्रथम बौद्ध संगीति हुई थी]

६—स्रावस्ती (श्रावस्ती)

इस स्थानको आजकल 'साहेत माहेत' कहते हैं। अयोध्याजीसे यह ५८ मील उत्तरमें है। कोसल राज्यकी राजधानी यहीं थी। [श्रावस्तीमें ही प्रसिद्ध सेठ अनाथपिण्डदका दिया हुआ भगवान्‌का प्रसिद्ध विहरण स्थान जेतवन था। इसे खरीदनेमें सेठने सारी भूमि पर स्वर्ण मुद्रा बिछानेमें जितना द्रव्य लग सकता था, उतना लगाया था। हुएन्सांगने यहांके पुराने विहारका भग्नावशेष देखा था। फाहियानके विवरणोंसे जान पड़ता है कि यहां प्रसेनजित्‌ने बुद्धदेवकी चंदनकाष्ठ निर्मित मूर्ति बनवाई थी। पुरातत्व विभागने वहांके एक मंदिरको खोदकर बुद्धकी एक बड़ी प्रस्तर मूर्तिका उद्धार जरूर किया है, पर अभी तक उस चंदनकाष्ठकी मूर्तिका कोई पता नहीं लग सका है।]

७—वैशाली

यह स्थान हाजीपुरसे २० मील उत्तर गंगाके तटपर है। पटनासे यह २६ मील पर पड़ता है। यहीं बौद्धोंकी दूसरी संगीति हुई थी। [यहीं लिच्छवियोंकी राजधानी थी। इस नगरीकी कूटागारशाला, अम्बपालीके आम्र-वन और महावन प्रभृति स्थानोंसे बुद्धदेव अनेक समय उपदेश दिया करते थे। जब भगवान् अन्तिम वार इस नगरीमें आये थे तो जानेके समय हाथीकी भांति उन्होंने आंखें फिराकर इसे देखा और कुछ व्याकुल-से होकर बोले—आनंद, अन्तिम बार इस नगरीको देख लूं! इसीसे इसके प्रति उनका प्रेम प्रकट होता है। यहीं पर महा प्रजावतीने भगवान्‌से नारियोंको संघमें ग्रहण करनेकी अनुमति माँगी थी। लिच्छावियोंने बुद्धके निर्वाणके बाद उनके भस्मावशेष पर यहां एक स्तूप बनवाया था।]

८—कौशाम्बी

प्रयाग (इलाहाबाद) से तीस मील दूर यमुना नदी पर स्थित है। पुरू-रवाकी दसवीं पीढ़ीमें कुसम्बने जन्म लिया था। इन्होंने इस नगरकी स्थापना की थी। प्रसिद्ध उदयन राजाकी राजधानी यही थी। बुद्धत्व प्राप्त करनेके पश्चात् छठवें एवं नवें वर्ष बुद्धदेवने यहां पर वास किया था। कहते हैं यहां भी बुद्धदेवकी चन्दन मूर्ति थी।

९— नालन्दा

राजगृहसे ७ मील उत्तरमें स्थित है। पटनासे तीस मील दक्षिण-पूर्व है। बुद्धगयासे चालीस मील उत्तर दिशामें है। बुद्धदेवने यहां तीन मास तक धर्मोपदेश किया था। प्राचीनकालमें यह विद्याका भारी केन्द्र था। यहां पर एक बड़ा विश्वविद्यालय था। [हुएन्सांगके समय यह स्थान बहुत समृद्ध था। यहां छः राजाओंने ६ बड़े-बड़े बिहार बना रखे थे इनके चारों ओर ईंटोंका

एक परकोटा था। विद्यालयमें १०००० विद्यार्थी शिक्षा पाते थे और बौद्ध-धर्मके अट्ठारहों सम्प्रदायों तथा अन्यान्य दर्शनोंका अध्यापन होता था। यहांके आचार्य शीलभद्र बहुत बड़े पंडित थे।]

१०—कोशल

यह अयोध्याजीका प्राचीन नाम है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस नगरकी स्थापना मनु महाराजने की थी। इसका नाम वाल्मीकि रामायणमें आया है। यहांके राजा प्रसेनजित् और विरुधककी कथा कपिलवस्तुके प्रसंगमें कही गई है।

११—पाटलीपुत्र

अब इसे पटना कहते हैं। इसका पुराना नाम कुसुमपुर था। यहीं गंगा पार करते समय बुद्धदेवने देखा था कि अजातशत्रु वृजियोंके आक्रमणको रोकनेके लिये किलाबंदी कर रहा है। उस समय उन्होंने इस स्थानकी भावी समृद्धिकी बात बताई थी। जिस द्वारसे उन्होंने गंगा पार किया था उसका नाम नगरपालने गौतम द्वार रखा था। आगे चल प्रसिद्ध सम्राट् अशोककी राजधानी यही थी।

इन स्थानोंके सिवा सिंहल, ब्रह्मदेश, तिब्बत, चीन, जापान आदिमें भी अनेक बौद्ध तीर्थ स्थान हैं, पर उनका सम्बन्ध परवर्ती कालके महात्माओंसे है, स्वयं बुद्धदेवसे नहीं।

१०

मूर्तिपूजा

बौद्धधर्मके प्रारम्भमें उसके अनुयायी मूर्तिपूजा नहीं किया करते थे। चक्र, त्रिरत्न,-चिह्न, स्तूप, पादचिह्न, बोधिवृक्ष, घंटे इत्यादि, यही इनकी उपासनाके साधन थे। इन्हीं वस्तुओंका आदर हुआ करता था।

इनके अतिरिक्त बुद्ध भगवानसे सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुओंकी भी पूजा होती थी। इनका उल्लेख हमको फाहियाँ, ह्वेन्त्सांग आदि चीनी यात्रियोंके वर्णनोंमें मिलता है। ये वस्तुएं तीन प्रकार की थीं (१) शारीरिक, जैसे दन्त, नख, केशादि (२) पारिभोगिक, जो वस्तुएं बुद्ध भगवानके व्यवहारमें आई हों जैसे भिक्षा पात्र, दण्ड इत्यादि (३) उद्देशिक, जो वस्तुएं बुद्ध जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली किसी घटनाकी स्मारक हों।

ईसवी शताब्दीके प्रारम्भमें गौतम बुद्ध तथा अन्यान्य बुद्ध एवं बोधिसत्वों की उपासना आरम्भ हुई। कलकत्ताके अजायबघरमें बुद्धदेवकी सबसे पुरातन मूर्ति सुरक्षित है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह मूर्ति ईसवी सन् १४२ की बनी हुई है। यह मूर्ति बुद्धगयाके पासके खण्डहरोंमें प्राप्त हुई थी।

बौद्ध धर्ममें मूर्तिपूजा प्रचलित होनेके मुख्य-मुख्य कारण ये हैं:—

(१) लोगोंने यह अनुमान किया कि जिस महात्माके उपदेशके प्रभावसे मृत्यु पर विजय प्राप्त की गई और जिस महात्माने लोगोंको मोहपाश तथा अज्ञानान्धकारसे हटा लिया उस महात्माको भुला देना अनुचित है। अतः मूर्ति-स्थापना अवश्य होनी चाहिये।

(२) पहले-पहल मूर्ति एवं दूसरे चिह्न केवल स्मारक ही समझे जाने लगे, किन्तु समय परिवर्त्तनसे लोग उनको पूजने लगे।

(३) लोगोंने यह भी विचार किया कि बुद्ध भगवान्‌का जिन-जिन वस्तुओंसे सम्बन्ध था, उन सबका आदर अवश्य होना चाहिये।

(४) मन्दिरोंकी सजावट मूर्तिसे होना चाहिये। मन्दिरोंकी दीवालों पर भी चित्र अंकित करना चाहिये।

उपर्युक्त कारण ही मूर्तिपूजाके साधन हो गये। आरम्भमें मूर्ति एवं चित्र आदरके विषय थे। शनैः शनैः बुद्ध—धर्मावलम्बी इन सबकी पूजा करने लगे। और उनमें दैवी शक्तिका भी आरोप हुआ।

पीमो (Pimo)में भगवान बुद्धकी एक मूर्त्ति है जो बीस फुट ऊंची तथा चन्दनकी लकड़ीकी बनी हुई है। आरम्भमें बुद्ध भगवानकी मूर्त्तियां ऐसी बनाई जातीं थीं जिनमें स्वास्थ्य, शान्ति, विश्वमैत्री और जितेन्द्रिताके भाव पूर्णरूपसे अंकित हों। मूर्ति किसी भी आभूषणसे अलंकृत नहीं की जाती थी। भगवान् बुद्धके कर्ण लम्बे और लटकते हुये बनाये जाते थे। हथेलियों पर शुभ चिन्ह अंकित किये जाते थे तथा केश कुञ्चित रहते थे। मूर्तियोंमें बुद्धदेव एक उत्तरीय ओढ़े हुए दिखाये जाते हैं।

ब्रह्मा तथा श्याममें जो मूर्त्तियां पाई जाती हैं, उनमें एक विचित्र प्रकार का सींग मस्तकके मुकुटमें रहता है।

लंकाकी मूर्त्तियोंमें मुकुटके नीचेसे अंगुलियोंके समान पद्म-ज्वाला ऊपर तक निकलती हुई दिखाई पड़ती है।

नैपालकी मूर्त्तियोंमें कुण्डल अवश्य रहता है।

भगवान बुद्धके डीलडौलके विषयमें मतभेद है। बहुत प्रचलित मत यह है कि उनकी ऊंचाई अठारह फुट थी, कोई कोई उसे बीस बालिश्त बतलाते हैं। चीनमें लोग उनकी ऊंचाई सोलह फुट बतलाते हैं। भगवान रामचन्द्रकी भांति इनको आजानबाहु भी कहा जाता है।

बुद्ध भगवानकी मूर्तियां बैठी खड़ी और लेटी हुई तीनों रूपकी मिलती हैं। उनकी परिनिर्वाणकी मूर्तिमें वे लेटे हुए दिखाये जाते हैं।

बुद्ध मूर्त्तियां पांच मुद्राओंमें देखी जाती हैं (१) अभयमुद्रा—इसमें दाहिना हाथ ऊपर रहता है। (२) ध्यान मुद्रा—इसमें गोदमें हथेलीके ऊपर खुली हथेली रहती है। (३) भूमिस्पर्शमुद्रा—इसमें दांये हाथसे पृथ्वीको छूते दिखाई पड़ते हैं (४) व्याख्यान मुद्रा—व्याख्यान देनेकी मुद्रा है इसमें दोनों हाथ छातीके पास आ जाते हैं। (५) वरद मुद्रा—इसमें दाहिनी हथेली नीचेकी तरफ आगेको रहती है।

बुद्ध भगवानकी मूर्तियोंके अतिरिक्त बोधिसत्त्वोंकी भी पूजा होती है उनमें मैत्रेय तथा मञ्जुश्री, अवलोकितेश्वर और बज्रपाणि मुख्य है। अवलोकितेश्वरकी मूर्तिमें उनके ज्ञान और शक्तिका विस्तार दिखानेके लिये ग्यारह सिर तथा हजार बाहुएं दिखाई जाती है। मञ्जुश्रीके हाथमें ज्ञानकी तलवार रहती है और वज्रपाणिके हाथमें वज्र। इनके सिवा गौतम बुद्धके पूर्वके बुद्धोंकी भी मूर्तियां रहती हैं। इस प्रकार बुद्ध-धर्ममें मूर्तिपूजाका विस्तृत विधान है।

११

बौद्ध धर्म और जाति भेद

यद्यपि बौद्ध धर्म मनुष्य मात्रकी समानतापर निर्भर है तथापि बौद्ध धर्ममें ब्राह्मणों तथा क्षत्रियोंका विशेष रीतिसे आदर रहा है। इसीके साथ हम यह भी कह सकते हैं कि ब्राह्मण-क्षत्रियेतर जातियोंका किसी प्रकारसे अनादर नहीं हुआ है। किसीकी उच्चता और श्रेष्ठताके लिये उसकी जाति बाधक नहीं हुई। कहा जाता है कि महात्मा उपालि, जिन्होंने राजगृहकी महासभामें शास्त्रीय पाठ निश्चित किया था, जातिके नापित थे। बुद्ध सङ्घमें सम्मिलित होनेके लिये कोई जातिका प्रतिबन्ध नहीं था। इतनी बात अवश्य थी कि बुद्धदेवको स्वयं अपने शाक्यवंशका पूर्ण गर्व था। वह शाक्य वंशके सम्बन्धमें कोई हीनताकी बात नहीं सुन सकते थे। जहां-जहां ब्राह्मणोंका उल्लेख आया है वहां-वहां विशेष आदरके साथ आया है।* किन्तु उच्च-कुलमें जन्म लेनेकी अपेक्षा उच्चाशयता एवं उच्च कार्योंकी अधिक आवश्यकता थी। धम्मपदमें ब्राह्मणोंके

---

* महाराज अशोककी धर्म लिपियोंमें भी ब्राह्मणों एवं श्रमणोंको एकसा आदर दिया है।

जो गुण बतलाये गये हैं वे बहुत ही उच्चादर्शके हैं। उन गुणोंके पालक ही ब्राह्मण कहे जा सकते थे। ब्राह्मण जातिका अव्यक्त रूपसे आदर अवश्य था क्योंकि उच्च गुणोंके पालक ब्राह्मणके नामसे पुकारे जाते हैं। यदि इस शब्द का इतना आदर न होता तो ब्राह्मणकी जगह और कोई शब्द रख दिया जाता। धम्मपदमें ब्राह्मणके सम्बन्धमें निम्नलिखित श्लोक दिये गये हैं।

न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसम्भवं।
भोवादी नामसो होति स चे होति सकिञ्चनो।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न हुआ हो अर्थात् ब्राह्मणीके गर्भसे जिसकी उत्पत्ति हो केवल ऐसे मनुष्यको मैं ब्राह्मण नहीं कह सकता। यदि ऐसा मनुष्य राग-द्वेषादिसे मुक्त हो उसीको मैं ब्राह्मण कह सकता हूं। गुण कर्म स्वभावसे वञ्चित केवल भोः भोः शब्दका व्यवहार करनेवाले ब्राह्मण भोवादी कहलाते हैं। आशीर्वाद देते समय 'भोः' शब्दका प्रयोग होता है। जो राग द्वेषादिसे निष्कलङ्क, द्वन्द्वातीत है उसको ही मैं ब्राह्मण कहता हूं।

सब्बसंयोजनं छेत्वा यो वे न परितस्सति।
सङ्गातिङ्गं विसञ्जुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो मनुष्य संसार बन्धनकी रस्सीको तोड़कर सुख दुःखसे भयभीत होता है। अर्थात् उसमें सहनशक्ति होती है, ऐसे आशासे परे महात्मा हीको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

अक्कोसं वधबन्धं अदुट्ठो यो तितिक्खति।
खन्तिबल बलाणीकं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो दूसरेको निन्दाघात एवं बन्धनको दया भावसे क्षमा कर देता है, ऐसे क्षमावान् और शान्ति रूप सेना रखनेवाले महात्माको ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

वारि पोक्खरपत्तोऽव आरग्गेरिव सासपो ।
यो न लिम्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥

कमल-पत्रमें जल विन्दुके समान तथा रूखानीकी धारपर अथवा सूचिका-की नोंकके ऊपर सरसोंके समान रूपादि विषयोंमें जिसका मन आसक्त नहीं है अर्थात् जिस प्रकार सुईकी नोंकपर सरसों ठहर नहीं सकता है उसी प्रकार रूप विषयादि जिसके हृदयमें स्थान नहीं पाते हैं उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

असंसट्ठं गहट्ठेहि अनागारेहि चूभयं ।
अनोकसारिं अप्पिच्छं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥

जिसका न गृहस्थाश्रमसे और न संन्यासाश्रमसे कोई सम्बन्ध है ऐसे आशातीत सन्तोषी जनको ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

निधाय दण्डं भूतेसु तसेसु थावरेसु च ।
यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥

जो स्थावर जंगम सब प्राणियोंपर दया भाव दिखलाकर अहिंसा व्रत धारण करता है ऐसे दयावान् हृदयवाले महात्माको ही मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

अककसं विञ्ञापिनं गिरं सच्चं उदीरये ।
याय नाभिसजे किञ्चि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥

सदा मीठा, मृदुल, एवं सत्य सम्भाषण करना चाहिये जिससे किसीकी निन्दा अथवा अपमान जरा भी न हो । ऐसे मृदुभाषण करनेवाले महात्माको मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

योऽधं पुञ्ञं च पापं च उभोसङ्गं उपच्चागा ।
असोकं विरजं सुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥

जो पुण्य-पाप दोनोंका ही त्याग कर चुका है और विषय वासनादिसे परे है ऐसे शोक रहित वैरागीही को मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

हित्वा रतिं चारतिंच सीतिं भूतं निरूपधिं।
सब्बलोकाभिभुं वीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो प्रीति तथा अप्रीतिका त्यागकर शान्ति मार्गमें स्थित है और राग-द्वेषादि उपाधि-रहित त्रिलोक-पूज्य एवं उद्योगी है ऐसे ही महापुरुषको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

जातिभेदका न होना ही बुद्धधर्मके विस्तारका कारण हुआ है। किन्तु भारतवर्षमें जातिभेदका प्रभाव इतना प्रबल है कि वह किसी-न-किसी रूपमें अपना अड्डा जमाये रहता है। इसीके तिरस्कारसे बुद्ध धर्मको हानि पहुंची। बुद्ध महाराजने जातिभेदको मिटाया एवं ब्राह्मण शब्दकी प्रतिष्ठा कायम रक्खी किन्तु उसको जन्मसे नहीं माना वरन् उसमें गीतामें बताये हुए स्थितिप्रज्ञके लक्षणोंको देखा है।

हम संक्षेपमें यह कह सकते हैं कि भगवान जातिभेदको नहीं मानते थे। परम्पराका आदर करते हुए उन्होंने ब्राह्मण शब्दकी प्रतिष्ठा रक्खी किन्तु ब्राह्मणको ब्राह्मण जातिसे नहीं कहा वरन् गुण कर्म और स्वभावसे कहा। गीताका स्थितिप्रज्ञ तथा बुद्ध भगवानके ब्राह्मणका आदर्श प्रायः एक-सा है। अच्छे गुणवालेको ही बुद्धदेवने ब्राह्मण माना है।

१२

लोकाचार

—*—

लङ्का तथा ब्रह्मामें शिशु जन्मके उपरान्त कुछ लोकाचार अनिवार्य हैं। सबसे बड़ा तो यह है कि बारहवें दिन शिशुका सिर धोया जाता है और मित्रमण्डल तथा सम्बन्धियोंको निमन्त्रण दिया जाता है। भोजनोपरान्त सब लोग एकत्रित होते हैं। तब नामकरणकी चरचा होती है। सर्व-सम्मतिके अनुसार शिशुका नाम रक्खा जाता है। जिस दिन बालकका जन्म होता है उस दिनका एक न एक अक्षर नाममें जरूर रहता है। तात्पर्य यह कि उस दिनके अक्षरोंमेंसे एक न एक अक्षरसे ही नाम प्रारम्भ होता है। शिशुके जन्म-दिवसपर ही उसके भविष्यका अनुमान कर लिया जाता है। यदि कोई शिशु सोमवारको जन्म ले तो ऐसा अनुमान कर लिया जाता है कि इसके स्वभावमें स्पर्धाकी मात्रा अधिक रहेगी। दूसरोंके सुख एवं ऐश्वर्यको सहन न कर सकेगा। दूसरोंका वैभव देखकर सदा जलता रहेगा। डाहकी अग्नि सदा इसके हृदयमें प्रज्ज्वलित रहेगी। यदि कोई शिशु मंगलवारको जन्म लेगा तो

ऐसा अनुमान कर लिया जाता है कि इसका जन्म शुभदिवसमें हुआ तथा बालक सदाचारी एवं सत्यवादी और ईमानदार होगा। यदि किसीका जन्म बुधवारको हो तो उसका स्वभाव क्रोधयुक्त समझा जाता है। ऐसा शिशु कभी हँसमुख नहीं हो सकता। इसी प्रकार सातों वारोंका फलाफल समझा जाता है।

जिस किसीका जन्म सोमवारको होता है तो उसके विषयमें यह अनुमान तो पहिले हीसे कर लिया जाता है कि इसके स्वभावमें डाहकी मात्रा सबसे अधिक रहेगी। दूसरा अनुमान यह किया जाता है कि १५ वर्षोंतक इसपर सूर्य (ग्रह) का प्रभाव रहेगा; मंगल (ग्रह) का आठ वर्षतक। तेईसवें वर्षसे बुद्धका प्रभाव; इसी प्रकार सब ग्रहोंका प्रभाव कुल मिलाकर १०८ वर्षोंतक रहेगा। राहु तथा शनि पाप-ग्रह माने गये हैं।

बच्चोंका मस्तक धोना, मंगलवार, शुक्रवार तथा शनिवारको अशुभ समझा जाता है। जब कोई बालक विहारको भेजा जाता है तो उसके केश उसके जन्मदिवसके वारको तथा मंगल और शुक्रवारको नहीं काटे जाते।

बच्चोंके गलेमें कवच बांधनेकी प्रथा बहुत ही व्यापक है। यह कवच शिशुके गलेमें बांधा जाता है। कवच किसी भी धातुका बना हुआ हो सकता है। उसमें किसी प्रकारके मन्त्र-तन्त्र भरे रहते हैं। इसके विषयमें यह भावना है कि जिस बालकके गलेमें यह कवच रहेगा उसे किसी प्रकारकी पैशाचिक बाधा न होगी और वह सदा हृष्ट-पुष्ट रहेगा।

रोगोपचार

जब कोई व्यक्ति अस्वस्थ होता है तो उसके औषधोपचारका ढङ्ग कुछ निराला ही है। किसी पासके विहारसे भिक्षु (आचार्य्य) को बुलाया जाता है। जब आचार्य्य महोदयका शुभागमन होता है तो पुष्प, सुगन्धित द्रव्य तथा भोजन-सामग्रीसे उनका स्वागत किया जाता है। मकानके पास ही उप-

देशार्थ भूमि स्वच्छ व पवित्र की जाती है। सम्बन्धी गण, मित्रवर्ग, और यदि सम्भव हो तो रोगी भी वहां एकत्रित होते हैं। आचार्य्य महोदय ६ घंटोंतक उपदेश करते हैं और सब लोग भक्ति भावसे सुनते हैं। उस समय 'रत्नावली'-का कुछ भाग मुख्यतया लोगोंको श्रवण कराया जाता है। छींटका एक छोर आचार्य्य महोदय पकड़ते हैं और दूसरा रोगी अथवा दूसरा कोई भी। तब मन्त्र पढ़ा जाता है। मन्त्रका तात्पर्य यह है "रोगीके भक्ति भावके प्रतापसे वह जल्दी ही स्वस्थ होजाय। दान देनेके पुण्यके प्रतापसे रोगीको खूब धन प्राप्त हो। जब कि रोगीके बचनेकी आशा नहीं रहती तब निम्नाङ्कित मन्त्रोंका उच्चारण कराया जाता है :—

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धर्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।

इसके उपरान्त पञ्चशील और फिर सतीपट्ठान सुत्तका उच्चार किया जाता है।

पंचशीलका भाव इस प्रकारसे है :—

१ अहिंसा, २ चोरी न करना, ३ भोगविलासमें लिप्त न रहना, ४ मृषा न बोलना, ५ मदिरापान न करना।

यदि किसी स्थानमें जहां बुद्ध धर्मावलम्बी रहते हैं, कभी कोई बीमारी फैलती है तो उस समय बीमारीसे बचनेके हेतु अद्भुत उपाय किये जाते हैं। लोग एक मिट्टीके घड़े पर बीमारीकी कल्पित मूर्ति खींचते हैं तथा सूर्योदय होते ही उस घड़ेको फोड़ देते हैं। इस उपायसे वह लोग यह समझते हैं कि उन्होंने बीमारीको तोड़-मरोड़ कर भगा दिया अथवा नष्ट कर दिया और अब किसी प्रकारका भय नहीं है। सायंकालके समय लोग नाना प्रकारसे चिल्लाते

हैं। लोग चीखते हैं, चिढ़ाते हैं और शोर मचाते हैं। इससे यह अनुमान किया जाता है कि जिस पिशाचके कारण बीमारीका प्रकोप हुआ वह अब डरकर भाग जावेगा, बीमारीका भी शमन हो जावेगा। यह विधि तीन दिन तक रातमें होती रहती है। यदि इस उपायसे कोई लाभ न हुआ तो महन्त बुलाया जाता है। महन्त महोदय दशादेशका उच्चार करते हैं तथा धर्मग्रन्थका पाठ किया जाता है। अन्तमें एक मन्त्र विशेष भी पढ़ा जाता है। यह वही मन्त्र होता है जिस मन्त्रके पढ़नेसे बुद्ध भगवान्‌ने एक दफा मरी (एक प्रकारकी बीमारी) को दूर किया था।

जब कोई बीमार होता है तो महन्त महोदयका आदर पूर्वक आह्वान हुआ करता है। जब वे आ जाते हैं तब रोगीकी परीक्षा करते हैं और जिस रोगको वे समझते हैं उसका नाम एक कागजके टुकड़े पर लिखते हैं और थूकमें उसकी गोली बनाकर रोगीको दी जाती है। रोगी उस गोलीको गलेके नीचे उतार देता है। यदि रोगी गरीब हो तो उसका रोग उत्पन्न करनेवाला पिशाच भी गरीब होता है वह सहजमें ही सन्तुष्ट हो जाता है। यदि रोगी धनी हुआ तो उपाय कुछ विस्तारके साथ किया जाता है क्योंकि धनी आदमीकी बीमारीका पिशाच बहुत बड़ा एवं भयानक होता है। महन्त महोदयको मूल्यवान् वस्त्र, एक जोड़ा जूता तथा घोड़ा नजर किया जाता है।

रोगके शमनके लिए एक और प्रकारकी दवाई भी तैयार की जाती है। यह औषधि किसी पवित्र लामाकी हड्डियोंसे बनाई जाती है। हड्डियां पीस कर या तो वैसे ही रोगीको दी जाती हैं अथवा किसी भी वस्तुमें मिलाकर दी जाती हैं। रोगसे मुक्त होनेका एक और भी बढ़िया उपाय होता है। धीवर लोग तालाब इत्यादिसे जो मछलियां पकड़ कर बेंचा करते हैं उन (मछलियों) को जीवनदान देना भी अच्छे होनेका एक खासा उपाय समझा जाता है।

मछली वालेको मुंहमांगा मूल्य देकर मछलियां तालाबमें छुड़वा दी जाती हैं।

विवाह

विवाह-विधि बहुत ही साधारण होती है। इसमें धार्मिक विधि कुछ भी नहीं होती। यह केवल एक लौकिक व्यवहार समझा जाता है। वर अथवा वरके माता पिता भोजन समारम्भकी आयोजना करते हैं। सब लोग आनन्दसे भोजन करते हैं। केवल भिक्षुगणोंको, कुछ धन अर्पण करना पड़ता है। विवाह सम्बन्ध ज्योतिषी महोदयके वाक्य पर निर्भर रहता है। वर-वधूके शुभाशुभके विषयमें ज्योतिषी महोदयके वाक्य ही ब्रह्मवाक्य समझे जाते हैं। शनिवार और गुरुवार वैवाहिक कृत्यके लिये अशुभ वार समझे जाते हैं। ऐसी स्त्री जिसका जन्म शुक्रवारको हुआ हो सोमवारके दिन पैदा होनेवाले पुरुषसे कभी शादी नहीं करेगी। इन लोगोंमें पर्देकी कोई कैद नहीं है। इनके यहाँ पर्दा होता ही नहीं।

मृत्यु

जब कोई परलोक सिधारता है तो उसकी आत्माकी शांतिके लिये तथा उसके सुखमय पुनर्जन्मके हितार्थ महन्तोंको दान दिया जाता है।

तिब्बतमें जब कोई रोगी मरणासन्न होता है तो रोगीकी खोपड़ी इतनी जोरसे दबाई जाती है कि वह चटक जाती है अथवा उसके बाल उखाड़ लिये जाते हैं या उसके सिरमें छोटा-सा घाव कर दिया जाता है। यह हिन्दुओंकी कपाल-क्रियाका ही प्रकारान्तर समझा जाना चाहिये। लोगोंका विश्वास है कि जिसकी आत्मा ब्रह्माण्ड फोड़कर निकलती है वह सीधा स्वर्गलोक जाता है। इसका यह तात्पर्य है कि आत्मा वहांसे निकल जाय। रोगीके मर जाने पर महन्त (भिक्षु आचार्य) उसकी (मृतककी) अन्तिम क्रियाका दिन,

समय तथा स्थानका निश्चय करता है। यह निश्चय ज्योतिष पर निर्भर रहता है जो सिवा महन्तके और किसीको ज्ञात नहीं रहता।

लङ्कामें जब कोई भिक्षु (महन्त) मरता है तो उसका मृत शरीर जलाया जाता है। अस्थि इत्यादिको लोग बड़ी धूम-धामके साथ चमर-छत्र हिलाते-झुलाते ले जाते हैं और अस्थि सहित सब वस्तुओंको किसी स्थान पर रख देते हैं। ये सब वस्तुएँ तथा अस्थि फिर उस स्थानसे कभी नहीं उठायी जातीं।

ब्रह्मामें जब महन्तकी मृत्यु होती है तो उसके शरीरको सजाते हैं और फिर श्वेत वस्त्रमें लपेटते हैं। यह हो जाने पर शव पर कफन डालते हैं। एक मनुष्याकार सुवर्ण पत्र ऊपर रख दिया जाता है। शवके रखनेके लिये एक पत्थरका पात्र-सा बनाया जाता है उसपर बुद्ध भगवान्के चित्र खींचे जाते हैं। यह एक इमारतमें रखा जाता है जो इसी कार्यके हेतु बनी रहती है। इस भवनमें मृत शरीर एक जगह कई मास तक बांध कर रक्खा जाता है। यात्रीगण कई दिनों तक तांता-सा लगाये रहते हैं। मृत शरीरका दर्शन करके कुछ भेंट चढ़ाई जाती है। जब काफी रुपया जमा हो जाता है तब पचास साठ फीट ऊँचा एक शामियाना तयार किया जाता है और शरीरको जलाकर जो अवशिष्ट रह जाता है वह सब गाड़ दिया जाता है और वहां पर बुद्ध भगवान्की मूर्ति स्थापित की जाती है।

इस प्रकार बौद्ध धर्ममें मृतक पुरुषकी स्मृतिकी रक्षा की जाती है।

१३

बौद्धकला

—*—

भगवान् बुद्धके द्वारा चलाये हुए धर्मकी सबसे महत्वपूर्ण देन भारतवर्ष एवं संसारके लिये बौद्धकलाके रूपमें आज भी हमारे सामने उपस्थित है। भगवान् बुद्धके जन्मके लगभग ३०० वर्षके बाद जब सम्राट् अशोकने इस धर्मका विश्वव्यापी प्रचार किया वही समय (ईसवी तृतीय शताब्दी पूर्व) बौद्धकलाके प्रारम्भका युग है। बौद्धकलाके विकासके समय लगभग १५०० वर्षका है एवं इसके विस्तारका क्षेत्र मध्य एशियासे लेकर भारतवर्ष, सिंहल, सुदूरवर्ती जावा एवं काम्बोज तथा चीन और जापान तक समझना चाहिये। परन्तु इसमें भी बौद्धकलाका महत्वपूर्ण युग मौर्यकालसे लेकर लगभग गुप्तकाल (छठी शताब्दी) तक सीमित रहता है। इसी तरह गांधार, भारतवर्ष, लङ्का एवं जावा इन देशोंकी कला सौन्दर्यकी दृष्टिसे अधिक उल्लेखनीय है।

बौद्धकलाका इतिहास साधारणतया तीन कालोंमें बांटा जा सकता है जो निम्नलिखित है—

१—मौर्य एवं शुङ्गकाल २७२ ई० पूर्वसे प्रथम शताब्दि ईसवी पूर्वके अन्त तक।

२—शक कुषाणकाल प्रथम शताब्दी ईसा पूर्वसे तीसरी शताब्दी ईसवी तक।

३—गुप्तकाल चौथी शताब्दीसे छठी शताब्दी तक।

इन युगोंमें इस कलाका जिन स्थानोंमें मुख्यतया विकास हुआ उनका थोड़ा सा परिचय यहां दिया जाता है।

१—मौर्यकाल—सम्राट् अशोकने एक प्रकारसे बौद्धकलाका प्रारम्भ किया। उत्तरसे दक्षिण तक समस्त भारतवर्षमें उनके शिलालेख एवं स्तम्भ पाये जाते हैं। अशोकने हजारों स्तूपोंका निर्माण कराया। ये स्तूप भगवान बुद्ध अथवा उनके प्रमुख शिष्योंके अस्थि आदिके अवशिष्ट चिन्होंको गर्भमें स्थापित करके उनके ऊपर ईंट पत्थरसे बनाये जाते थे।

अशोकके समयके बने हुए स्तूप ऊंचाईमें १०० फुटतक होते थे एवं उनका घेरा भी इसी हिसाबसे होता था। उस समयका एक स्तूप सारनाथमें है। कलाकी दृष्टिसे स्तूपोंके अच्छे उदाहरण भूपाल रियासतमें सांची नामक स्थान में हैं। इन स्तूपोंके साथ सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उनके चारों ओर पत्थरकी एक चार दीवारी बनाई जाती थी। उसे संस्कृतमें वेदिका कहते थे। चार दीवारीमें चारों दिशाओंकी तरफ चार बड़े फाटक रहते थे जिनको संस्कृतमें तोरण कहते हैं। वेदिकाके हर दो खम्बोंके बीचसे तीन आले पत्थर लगाये जाते थे जिनका संस्कृत नाम सूची है और खम्बोंके ऊपर पटाउकी तरह एक पत्थर लगाया जाता था जिसे उष्णीष या मूर्धन्य कहते थे। उस समयके कारीगरोंकी चतुराई इन्हीं वेदिका और तोरणोंकी सजावटमें देखी जाती है। उनके खम्बोंपर भांति-भांतिके पटाउकी मूर्तियां और बेले

पाई जाती हैं और सूचियोंके बीचमें अनेक तरहके कमल बने रहते हैं। सांची के स्तूप, तोरण और वेदिकाएं आज भी बहुत उत्तम अवस्थामें विद्यमान हैं और उनकी गणना संसारकी उच्च कलामें की जाती है।

नागौद रियासतके भारहुत नामक स्थानमें भी शुङ्ग कालके स्तूप वेदिका और तोरण थे पर इस समय वह सब सामग्री वहांसे उठाकर कलकत्तेके अजायब घरमें सजा दी गई है। भारहुतके वेदिका स्तम्भोंपर बनी हुई यक्षिणियोंकी गणना भारतीय शिल्पके सर्वोत्तम उदाहरण हैं।

अशोककालकी कलामें एक ऐसी विशेषता है जो बादमें फिर कभी प्राप्त नहीं हो सकी और वह पत्थरपर शीशे जैसी चमकीली पालिश थी। सारनाथमें जो सिंह स्तम्भ मिला है जिसपर सटाकर उकड़ू बैठे चार शेरोंकी मूर्तियां है। वह इस कलाका सर्वोत्तम उदाहरण है।

सारनाथ सांची और भारहुतके अतिरिक्त मौर्य शुङ्ग कालीन शिल्पके उदाहरण बोधगया एवं उड़ीसाकी उदयगिरि और खण्डगिरि पहाड़ियोंकी कुछ गुफाओंमें मिले हैं जिनमें हाथी गुफा, रानी गुफा, गणेश गुफा एवं अलकापुरी नामकी गुफाएं प्रसिद्ध हैं। इनका समय १५० ई० से ५० ई० तकका है। इनमें रानी गुफा सबसे बड़ी है। प्रथम पांच गुफाओंका सम्बन्ध जैन धर्मसे है परन्तु सजावटके लिए जैन किम्बा बौद्ध दोनों कलाओंमें एक ही जैसी सामग्रीका प्रयोग किया गया है। सर्वत्र उसी प्रकारकी कमलकी बेलें पशु-पक्षी एवं सरोवरोंके प्राकृतिक दृश्य तथा त्रिरत्न चैत्य बोधि वृक्ष मांगलिक चिन्होंका उपयोग किया गया है।

२—शक कुषाण काल ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दीमें भारतवर्षमें ईरानी शक जातिका आगमन हुआ। लगभग तीन शताब्दियोंतक उत्तरी भारतकी राजनीतिक सत्ता इनके अधिकारमें रही। यहां आनेपर इन्होंने बौद्ध और

हिन्दू धर्मको पूरे तौरसे अपनाया एवं उनके प्रचारमें सहायता दी।

उनके सिक्कोंपर नन्दी वृषके साथ खड़े हुए त्रिशूलधारी शिवकी सुन्दर मूर्तियां पायी जाती हैं। शक जातिकी एक विशेष शाखाने कुषाण वंशके नामसे लगभग दो शताब्दी तक राज्य किया जिसमें वेम, कनिष्क हुविश्क एवं वासुदेवके नाम प्रसिद्ध हैं। इन महाप्रतापी सम्राटोंकी छत्र छायामें बौद्ध कला खूब फूली फली। इस समय इसके दो प्रधान केन्द्र थे। एक मथुरा दूसरा गान्धार।

मथुराकी कुषाण कालीन कला ऐतिहासिक दृष्टिसे बहुत महत्त्व रखती है। मथुरासे पहले ३०० वर्षों तक कहीं भी पहले बुद्ध मूर्तिका निर्माण नहीं देखा गया। सांची भारहुत स्थानोंमें बुद्ध कला तो है लेकिन बुद्धकी मूर्तिका एक भी नमूना नहीं मिला। मथुरा भागवत धर्मका केन्द्र था इसलिये बुद्धकी मूर्तिके निर्माणकी कल्पना सबसे पहले वहांके चतुर शिल्पियोंके मस्तिष्कमें उत्पन्न हुई और उसके निर्माणका श्रेय उनको ही मिला। इस एक बातसे बौद्ध कलाके विकासमें बड़ी भारी क्रान्ति हुई और हमेशाके लिये उसका रुख पलट गया। विशालकाय तोरण और वेदिकाओंका स्थान बुद्ध और बोधिसत्वकी अनेकानेक मूर्तियोंने ग्रहण कर लिया।

यद्यपि मथुरा कलामें सैकड़ोंकी संख्यामें वेदिका स्तम्भ प्राप्त हुए हैं जिनपर बनी हुई स्त्रियोंकी सुन्दर मूर्तियां अभूतपूर्व है तथापि बौद्ध कलाकी दृष्टिसे अधिक महत्त्व भगवान बुद्धकी उन प्रतिमाओंका है जिनका निर्माण मथुराके शिल्पियोंने किया था। मथुराके अजायब घरमें स्थापित इसी प्रकारकी एक बुद्ध मूर्ति है जो कटरा बोधिसत्वके नामसे मशहूर है ये मूर्तियां सारनाथ एवं कुशीनगर जैसे दूरवर्ती स्थानों तक मथुरासे लाकर पधराई गयी थीं। २०० वर्षों तक मथुरा उत्तरी भारतमें बौद्ध

मूर्तियोंका सर्वप्रधान केन्द्र रहा। बुद्ध प्रतिमाओंके अतिरिक्त और भी अनेक नाग-नागी यक्ष-यक्षिणियोंकी मूर्तियां मथुरामें पायी गयी हैं।

भारतवर्षके उत्तर पश्चिम सीमापर पेशावरसे लेकर अफगानिस्तान तकका प्रदेश गन्धार एवं कपिशाके नामसे प्रसिद्ध था। गन्धारकी राजधानी पेशावर या पुरुषपुर थी। बाहरसे आनेवाले शक राजाओंके समयमें गन्धारका महत्व स्वभावतया बढ़ गया। इसी प्रदेशमें सिकन्दरके बादसे यूनानियोंका भी राज्य रहा था जिसके कारण बहुतसे यूनानी यहां बस गये थे जो भारतीय धर्म और कलाको ग्रहण करनेके साथ अपने देशके धर्म और कलासे प्रेम बनाये हुए थे। ऐसे ही मनुष्योंके द्वारा कलाकी एक नयी शैलीका जन्म हुआ जिसमें भारतवर्ष और यूनान दोनोंकी विशेषताओंका मिश्रण था। यह शैली बौद्ध कलामें गन्धार कलाके नामसे प्रसिद्ध है। इसका प्रधान केन्द्र पेशावरके आसपास था जिसमें तक्षशिला सबसे प्रसिद्ध है। यहांपर बौद्धोंके बहुतसे स्तूप और विहार थे जिनकी खुदाईमें हजारों ही छोटी बड़ी बुद्धकी मूर्तियां मिली हैं। कला और सौन्दर्यकी दृष्टिसे ये मूर्तियां वहिर्मुखी हैं एवं मथुराकी अपेक्षा फीकी ठहरती हैं उनमें योगीका अन्तर्मुखी ध्यान वृत्तिका अभाव-सा है। गन्धार कलाकी मूर्तियां स्वात नदीकी घाटीमें मिलनेवाले एक प्रकारके सलेटी रङ्गके पत्थरकी हैं। मथुरा कलाकी मूर्तियां लाल रंगके चित्तीदार गेरुए पत्थरकी है।

कुषाण युगमेंही सुदूर कृष्णा और गोदावरी नदियोंके बीच आंध्र देशमेंभी बौद्ध कलाकी बहुत उन्नति हुई। इनमें अमरावतीके स्तूपके संगमर्मरके शिला-पट्ट बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त नागार्जुनी कुण्डाके स्तूपके भी बहुतसे उत्तम उदाहरण प्राप्त हुए हैं।

३—गुप्तकाल। ३२० ईसवी सन्में उत्तरी भारतमें गुप्त वंशका शासन प्रारम्भ हुआ। यह समय राजनीति, धर्म और कलाकी दृष्टिसे बहुत ही

उत्कर्षका था। बौद्ध एवं हिन्दू दोनों ही धर्म और कलाओंका एक-सा अभ्युदय इस युगमें हुआ। गुप्तकालीन कलाके केन्द्रोंमें मथुरा एवं सारनाथ प्रमुख हैं। मथुरामें कृष्णकालीन शैली और भी परिपक्व रूपमें विकसित हुई। बुद्धकी मूर्तियोंके निर्माणकी परम्परा और भी आगे बढ़ी जिसके फलस्वरूप कला और धर्म दोनों दृष्टिसे आदर्श बुद्ध मूर्तिके बनानेमें शिल्पियोंको सफलता मिली। इसका उदाहरण मथुराके अजायबघरकी एक मूर्ति है जिसे भिक्षु यशदिन्नने स्थापित किया। इसमें एक ओर योगियों जैसी अन्तर्लीन ध्यान वृत्ति पायी जाती है एवं दूसरी ओर बाह्य सौन्दर्यकी भी पराकाष्ठा है।

मथुराके अतिरिक्त सारनाथमें भी गुप्तकलाका बहुत अच्छा विकास हुआ है। वहांकी जो सबसे अच्छी बुद्ध मूर्ति है उसमें भगवान् बुद्ध शान्त भावसे पद्मासनमें विराजमान अपने पांच शिष्योंको धर्मोपदेश कर रहे हैं सिरके पीछे सुन्दर प्रभा मण्डल है और उनके दोनों हाथ धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रामें दिखाये गये हैं।

बौद्धोंकी शिल्पकलाके अतिरिक्त गुप्त युगमें चित्रकलाकी विशेष उन्नति हुई जिसके सर्वोत्तम उदाहरण अजन्ताकी गुफाओंमें विद्यमान हैं। ये गुफाएँ बौद्ध भिक्षुओंने अपने रहनेके लिये बनाई थीं। उनकी दीवालों और छत पर बनी हुई तस्वीरें भी सम्भवतः उन्हींकी बनाई हुई हैं। इन चित्रोंकी सजावट एवं रंगोंकी चमकको देखकर दंग रह जाना पड़ता है। कई विद्वान अजन्ताको संसारको सर्वश्रेष्ठ चित्रशाला कहते हैं। यहांके चित्रकारोंने जिस अधिकारसे कूंचीका प्रयोग किया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है। भारतीय चित्रकलाके पुनरुत्थानमें अजन्ताकी शैली एवं आदर्शोंका बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

५०० वर्षोंके विकासके बाद बुद्धकी मूर्तिमें भी जटिलता उत्पन्न हो गई ध्यानी गौतम बुद्धके अतिरिक्त अनेक प्रकारके बोधिसत्व और देवी-देवताओं

(जैसे तारा आदि) की मूर्तियां बनने लगीं। मूर्तिशास्त्रकी दृष्टिसे यह निश्चय महत्त्वका हो सकता है, परन्तु शुद्ध सौन्दर्यकी दृष्टिसे गुप्तकालके पश्चात् बौद्धकलाका विकास रुक-सा गया। छठी शताब्दीके बाद कलाके केन्द्र पूरबकी ओर बढ़ने लगे। नालन्दा एवं बंगालमें अनेक प्रकारकी जटिल मूर्तियों-का निर्माण हुआ और यह सिलसिला बारहवीं शताब्दी तक जारी रहा जब कि मुसलमानी आक्रमणके समय समस्त क्षीणशक्ति बौद्ध विहार नष्ट हो गये और बौद्ध मूर्तियोंके निर्माणकी परम्परा भारतवर्षसे उठकर तिब्बत आदि देशोंमें फैल गई।

१४

बौद्ध-सूक्तियां

(१) अपने लिये स्वयं दीपक बनो। अपनी ही शरण लो। आलोक की भांति सत्यका आश्रय लो।

(२) मुझे आनन्द भोग रूपी सुवर्ण कारागार को, जहां मेरा हृदय बन्दी है, मनुष्य मात्र की मुक्तिके अर्थ त्याग देना चाहिये।

(३) जिस प्रकार मधु मक्षिकाएं पुष्पोंसे मधु एकत्रित करती हैं किन्तु उनको हानि नहीं पहुंचातीं, उसी प्रकार बुद्धिमान पुरुष को अपना जीवन-व्यतीत करना चाहिये।

(४) मनुष्य को क्रोध पर कृपासे और बुराई पर भलाईसे विजय प्राप्त करनी चाहिये।

(५) इस संसारमें कभी घृणाका दमन घृणासे नहीं हुआ। केवल प्रेम ही घृणाका अन्त कर सकता है।

(६) जैसे जुही की लता कुम्हलाए हुए फूलोंका त्याग कर देती है वैसे ही तुम राग द्वेष को छोड़ दो।

(७) दुःखका समूल नाश करनेके लिये ब्रह्मचर्य व्रतका पालन अत्यन्त आवश्यक है ।

(८) कंजूस को दानसे, मिथ्यावादी को सत्यसे जीतना चाहिये ।

(९) यदि तुम मनमें इस पर विचार करते रहो कि 'अमुक व्यक्तिने मुझे गाली दी, मुझे पीटा, अथवा लूट लिया' तो क्रोध कभी शान्त न होगा । क्रोधका, क्रोधसे नहीं वरन् शीलसे शमन होता है ।

(१०) लालचियोंमें लालच छोड़ कर हम प्रसन्नतापूर्वक रह सकते हैं ।

(११) दूसरों को हानि पहुंचाना सरल है, किन्तु दूसरों की भलाई करना अत्यन्त कठिन है ।

(१२) मनसा वाचा कर्मणा किसी को भी मत सताओ, सदा भलाई में रत रह कर प्रसन्न रहो ।

(१३) हिमालयके धवल शिखरोंके समान संतजन दूरसे ही प्रकाश देते हैं । और असन्त लोग इस तरह अदृष्ट रहते हैं, जैसे रातमें छोड़ा हुआ बाण ।

(१४) जिसने कषायों (मलों) का त्याग कर दिया है, जो सदाचारी संयमी और सत्यवान् है वही कषाय वस्त्र धारण कर सकता है ।

(१५) न आकाशमें, न समुद्रमें, न पर्वतों की खोहमें कोई ऐसा ठौर है, जहां पापी प्राणी अपने किये हुए पाप कर्मोंसे त्राण पासके ।

(१६) पर छिद्रान्वेषणमें न रहो वरन् स्वयं अपने छिद्रों को देखो ।

(१७) दूसरोंको हानि पहुंचाकर अपनी भलाईकी कभी आशा न करो ।

(१८) एक सारगर्भित शब्द सहस्रों खोखले शब्दोंसे कहीं भला है ।

(१९) जिस प्रकार हवामें धूल फेंकनेसे वह फेंकने वाले ही पर उड़ती है, इसी प्रकार मनुष्यके कुकर्म जो भोले भालों को सतानेके निमित्त किये जाते , वे उसी को कष्टदायक होते हैं ।

(२०) दुःखोंका निवारण विश्वाससे, सच्चरित्रतासे, शौर्यसे, विचारोंसे, न्यायसे, सिद्धान्तसे, अभ्याससे एवं पूर्ण ध्यानसे करो।

(२१) बड़ा असलमें वही है, जिसमें सत्य, धर्म अहिन्सा, संयम और दम है, जो मलसे रहित और वीर है।

(२२) भिक्षा मांगने मात्रसे कोई भिक्षु नहीं होता। भिक्षु वही है जो धर्मानुकूल आचरण करता है।

(२३) यदि थोड़ा सुख छोड़ देनेसे विपुल सुख मिलता हो तो बुद्धिमान् पुरुष बिपुल सुखका खयाल करके उस थोड़ेसे सुखको छोड़ दे।

(२४) मनोहर शब्द सदुपदेशके विना ऐसे ही होते हैं जैसे पुष्प विना सुगंधिके।

(२५) भलाई की सुगंधि, सुवासित पुष्पों की सुगंधिसे कहीं मधुर है।

(२६) जो तुम्हारे दोषों को बतलाता है उसको गड़े हुए धनका दिखाने वाला समझो।

(२७) जो मनुष्य सत् सिद्धान्तोंका उपदेश करता है किन्तु स्वयं उनके पालन करनेमें आलस्य दिखाता है वह उस मजदूर चरवाहे की भांति है जिसके पास अपनी कोई भेड़ नहीं है।

(२८) किसी भी पुष्प की सुगन्धि वायुके बहावके विरुद्ध नहीं जाती किन्तु सच्चरित्रता की सुगंधि चारों ओर फैलती है।

(२९) सहस्रों अनर्थक वाक्योंसे वह एक सार्थक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुन कर शान्ति प्राप्त हो।

सहस्रों अनर्थक भाषाओंसे वह एक सार्थक भाषा श्रेष्ठ है, जिसे सुन कर शान्ति प्राप्त होती है।

(३०) आरोग्य परम लाभ है। संतोष परम धन है। विश्वास परम बन्धु है। और निर्वाण परम सुख है।

(३१) जुएमें धन गँवानेसे जो हानि होती है वह कम है, किन्तु सत्पुरुषोंके सम्बन्धमें अपना मन कलुषित करना तो सर्वस्व हानिसे भी बढ़ कर आत्महानि है।

(३२) जिन्होंने युवावस्थामें धन सञ्चय नहीं किया अथवा सदाचार पूर्ण जीवन व्यतीत नहीं किया वह मीन रहित सरके किनारेके बगले की भांति बुढ़ापेमें पश्चाताप करता है।

(३३) ज्ञानी की, साधु की, विद्वान की एवं उच्चाशय मनुष्यों की संगति करो जो कर्तव्य पराङ्मुख नहीं होते, ऐसे ज्ञानी लोगोंके एवं दूरदर्शी लोगोंके पद चिन्हों पर चलो।

(३४) स्वास्थ्य सबसे अच्छा वरदान है। संतोष सबसे बढ़िया धन है। सच्चा मित्र सबसे बड़ा आत्मीय है, तथा निर्वाण उच्चतम् आनन्द है।

(३५) सत्य एवं असत्यका विवेक करने वाला तथा जो दूसरों को भला बुरा कहनेमें त्वरा नहीं करता, न्यायी कहलाता है।

(३६) मूर्ख मनुष्य दुर्वचन बोल कर खुद ही अपना नाश करते हैं।

(३७) जो भी दुख पैदा होता है, वह सब संस्कारोंसे ही पैदा होता है। संस्कारोंके निरोधसे दुख की उत्पत्ति असम्भव हो जाती है।

(३८) सोने चांदीके लाखों करोड़ों सिक्कोंको मैं श्रेष्ठ धन नहीं कहता। उसमें तो भय ही भय है राजाका, अग्निका, जलका, चोरका, लुटेरे का, और अपने सगे सम्बन्धियों तकका भय है।

(३९) श्रेष्ठ और अचंचल तो मैं इन सात धनों को मानता हूँ। श्रद्धा, शील, लज्जा, लोक भय, श्रुत, त्याग, और प्रज्ञा। इस सप्त प्रकार धन को कौन लूट सकता है, और कौन छीन सकता है।

(४०) उच्चकुलमें जन्म लेनेसे लोभ थोड़ा ही नष्ट हो जाता है। उच्चकुलमें जन्म लेनेसे न द्वेष ही नष्ट होता है, न मोह ही।

(४१) उच्चकुलमें भले ही जन्म न लिया हो, किन्तु यदि मनुष्य धर्म मार्ग पर आरूढ़ होकर धर्मका ठीक-ठीक आचरण करता है तो वह प्रशंसनीय है, पूज्य है।

(४२) उलीचो, उलीचो, इस नावको उलीचो, उलीचनेसे तुम्हारी नाव हलकी हो जायगी और तभी जल्दी-जल्दी चलेगी। राग और द्वेषका छेद न करके ही तुम निर्वाण पद पा सकोगे।

(४३) अपनेको शासनमें रखो; छोटे-मोटे सभी कर्त्तव्योंका पालन करो और सदा औचित्यका ध्यान रखो।

(४४) मेरा कर्म ही मेरा सर्वस्व धन है। मेरा कर्म ही मेरी पैत्रिक सम्पत्ति है।

(४५) यदि किसी कर्तव्यका पालन करना हो तो पूरी शक्ति एवं प्रयत्न-से करो।

(४६) अपने ही कर्मोंके द्वारा मूर्ख दुखित होता है।

(४७) असफलता और आपत्तियोंसे अविचलित रह बुद्धिमान पुरुष अपने मनमें विकार नहीं आने देते।

(४८) अपने हाथसे कोई अपराध हो गया हो तो उसके लिये पश्चा-त्ताप करना, और भविष्यमें फिर कभी वह अपराध न करना यह आर्य गृहस्थ-का कर्तव्य है।

(४९) इस सारे प्रपंचका मूल अहंकार है। इसका जड़-मूलसे नाश कर देना चाहिये। अहंकारके समूल नाशसे ही अन्तःकरणमें रमनेवाली तृष्णाओंका अन्त हो सकता है।

(५०) सौ वर्षके आलसी और हीनवीर्य जीवनकी अपेक्षा एक दिनका दृढ़ कर्मण्यताका जीवन कहीं अच्छा है।

१५

बौद्ध साहित्य

बौद्धकला की भांति बौद्ध साहित्य भी बहुत विस्तृत है और उसने भारत की गौरव-वृद्धिमें बहुत कुछ योग दिया है। बौद्ध साहित्य दो विभागोंमें विभाजित है। एक पाली साहित्य दूसरा संस्कृत साहित्य। हीनयान शाखाका साहित्य पालीमें है। यह तो विवादास्पद बात है कि बुद्ध भगवान्‌ने अपने उपदेश ठेठ पाली भाषामें दिये। किन्तु यह बात निर्विवादसे कही जा सकती है कि पाली उस भाषासे बहुत निकट थी जिसमें भगवान्‌ने उपदेश दिया था। सम्भव है कि यह उस भाषाकी साहित्यिक भाषा हो। पाली या पालि पंक्ति शब्दसे बना है। बुद्धदेव अपनी वाणीका जन साधारणमें ही प्रचार करना चाहते थे इसलिये उन्होंने संस्कृतमें अपने बचनोंका अनुवाद होना भी नहीं पसन्द किया। वे उसे चुने हुए लोगों की वस्तु नहीं बनाना चाहते थे। यही उनकी लोकप्रियताका एक कारण है। स्वयं बुद्ध भगवान्‌ने लिखा कुछ नहीं था उनके वचन पहले भिक्षुओंकी मौखिक परम्परामें और फिर लिखित रूपमें

सुरक्षित रहे। इनके तीन संस्करण हुए जो तीन या चार संगीतियों या महा-सभाओं द्वारा प्रमाणित किये गये। पहली संगीति तो बुद्धदेवकी मृत्युके थोड़े दिन पश्चात् ही हुई थी क्योंकि कुछ लोग (इस सम्बन्धमें समुद्र नामके भिक्षुकका नाम विशेष रूपसे लिया जाता है) बुद्धदेवके परिनिर्वाणके पश्चात संघमें स्वतन्त्रता चाहते थे। यह सभा स्थविर भिक्षु महाकश्यपके सभापतित्वमें राजगृहमें हुई थी। विनयके नियम महाशय उपालिकी अध्यक्षतामें निश्चित हुए। सूत्र और धर्मके सिद्धान्त धर्मधर आनन्दकी अध्यक्षतामें निर्धारित हुए।

दूसरी संगीति बुद्ध निर्वाणके दो सौ वर्ष बाद बेसाली (वैशाली) में हुई थी। तीसरी संगीति विशेष महत्वपूर्ण न थी। चौथी संगीति जो सम्राट् अशोकके समयमें बुलाई गई थी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसको कुछ लोग तीसरी संगीति भी कहते हैं इसी संगीतिमें त्रिपिटकोंको अंतिम और प्रामाणिक रूप मिला। यह एक हजार भिक्षुओंके द्वारा महात्मा तिष्यकी अध्यक्षतामें हुई। जो भिक्षुगण मतभेद रखते थे वे सफेद वस्त्र पहना कर बाहर निकाल दिये गये।

त्रिपिटक (पिटक पिटारेको कहते हैं) के तीन विभाग हैं— (१) सुत्त (सूत्र) (२) विनय और (३) अभिधम्म (अभिधर्म) हैं। इनके विभाग इस प्रकार हैं—

सुत्त पिटकमें सूत्र हैं। सूत्र उसे कहते हैं जो सूचना दें, जो सुष्ठु भावसे कहा गया हो, जो सवन (या फल प्रसवकारी हो), सूदन यानी गायके थनसे दूधकी तरह अर्थ जिससे निःसृत हो रहा हो, सुत्राण करे, बढ़ईके सूत्रोंकी तरह विज्ञोंका माप करे। बुद्ध धर्मका मूल रूप इन्हीं सूत्रोंमें है। विनयमें संघकी मर्यादाके नियम हैं।

सूत्र पिटकमें पांच निकाय है। सुत्तपिटकमें पांच निकाय हैं दीघ निकाय (दीर्घ निकाय) में ३४ सूत्र, मज्झिम निकाय (मध्यम निकाय) में १५२ सूत्र, संयुत्त निकाय (संयुक्त निकाय) में ७७६२ सूत्र और अंगुत्तर निकायमें ९५५७ सूत्र हैं, खुद्दक निकायमें निम्नांकित १५ ग्रन्थ हैं।

(१) खुद्दक पाठ (२) धम्मपद (३) उदान (४) इतिवुत्तक (५) सुत्त नियात (सूत्र नियात) (६) विमान वत्थु (७) पेत वत्थु (८) थेर-गाथा (९) थेरी गाथा (१०) जातक (११) निद्देस (१२) पटिसम्भिदा (१३) अभिधानु (१४) बुद्धवंस (१५) चरिया पिटक।

विनय पिटकमें पांच खण्ड हैं। वे इस प्रकार हैं—

१ पाराजिक कण्ड } विभंग
२ पाचित्तिय कण्ड

३ महावग्ग } खन्धक
४ चुल्लवग्ग

५ परिवार

विनयके नियम संघके दैनिक प्रचारसे सम्बन्ध रखते हैं। ये नियम भिक्षुओंके पातिमोक्खकी (जो एक प्रकारसे भिक्षुओंके कार्मोकी सार्वजनिक स्वीकृति हुआ करती थी) व्याख्याके रूपमें होते थे। विभंगोंमें बताया गया है कि भिक्षु कैसे रहेगा, कैसे खायेगा, कैसे हँसेगा, कैसे चीवर धारण करेगा, क्या सोचेगा और क्या नहीं सोचेगा। खन्धकोंमें संघकी व्यवस्थाके नियम हैं उपोसथोंमें भाग लेनेके नियम, वर्षावासके, नियम, पादुका धारण, रथारोहण और वस्त्रोंके व्यवहारके विधि निषेध आदिका विवरण है।

कुछ लोग विनय पिटकको महत्ता देकर उसका वर्णन पहले देते हैं और कुछ लोग सुत्त पिटकका। बौद्ध धर्म भिक्षुओंका धर्म होनेके कारण उसमें

विनयका अधिक महत्व है। विनयका सम्बन्ध आचारसे है, सुत्तका सम्बन्ध विचारसे है।

अभिधम्म पिटकमें सात ग्रन्थ या काण्ड हैं वे इस प्रकार हैं—धम्मसंगणि, विभंग, कथावत्थु पुग्गल पञत्ति, धातु कथा, यमक, पट्ठान या महापट्ठान।

अभिधम्म पिटकका विषय तो वही है जो सुत्त पिटक का। किन्तु इसमें धर्मकी दार्शनिक व्याख्या अधिक है।

त्रिपिटकोंके अतिरिक्त अनुपिटक ग्रन्थ भी है इसमें कुछ तो लंकामें लिखे गये और कुछ भारतमें ही लिखे गये थे। भारतमें लिखे हुए ग्रन्थोंमें मलिन्द या मिलिन्द प्रश्न बहुत प्रसिद्ध है। इसमें आचार्य नागसेन और यूनानी राजा मिनाण्डरके बीचमें जो दार्शनिक प्रश्नोत्तर हुए हैं उनका वर्णन है। इसमें बौद्धधर्मकी सभी समस्याओं पर प्रामाणिक रूपसे प्रकाश डाला गया है। अनुपिटकोंका अधिकांश भाग लंकामें ही रचा गया था। लंकामें लिखे हुए ग्रन्थोंमें बुद्धघोषकी अट्ठकथाओंका, जो त्रिपटकोंके भाष्यके रूपमें लिखी गई थीं, अधिक महत्त्व है। इस प्रकार और भी कई टीकाकार हुए उनकी भी टीकाएं अर्थ-कथाओंके नामसे प्रसिद्ध हुईं। इन अर्थ कथाओं या अट्ठकथाओंके आधार पर दीपवंश और महावंश भी लिखे गये। दोनों ही काव्य पांचवी शताब्दीकी कृतियां मानी जाती हैं। इनके आधारपर काव्यकी परम्परा और भी चलती रही।

बौद्धोंके पाली साहित्यकी भांति उनका संस्कृत साहित्य भी उतना ही विस्तृत और विशाल है। यद्यपि मोटी तौरसे ऐसा विभाग किया जाता है कि हीनयानका साहित्य पालीमें है और महायानका साहित्य संस्कृतमें है तथापि ऐसा नहीं है कि हीनयानमें संस्कृतके ग्रन्थ न हों। भारतवर्षमें जो महायान साहित्य रचा गया था वह अपने मूल संस्कृत रूपमें बहुत कुछ लोप हो गया है। उसका उल्लेख जो संस्कृत ग्रन्थोंमें खण्डन मण्डन रूपसे आया है उसके

आधार पर उन ग्रन्थोंके तिब्बती और चीनी अनुवादोंका विद्वानोंने पता लगाया है और कुछ स्वतन्त्र रूपसे भी पता लगा है। विद्वानोंके अथक परिश्रमके फलस्वरूप वह अब धीरे धीरे प्रकाशमें आ रहा है।

नेपालमें अब भी कुछ बुद्ध लोग हैं जो नेवारी कहलाते हैं। उन लोगों में नीचे लिखे नौ ग्रन्थोंका प्रचार है।

प्रज्ञापारमिता, गंडव्यूह, दशभूमीश्वर, समाधिराज, लंकावतार, सद्धर्म पुण्डरीक तथागत गुह्यक, ललित विस्तर और स्वर्णप्रभा।

तिब्बतमें बौद्ध धर्म सातवीं शताब्दीमें पहुंचा था। वहां बहुतसे संस्कृत ग्रन्थोंका अनुवाद हुआ। तिब्बतमें जो कॅंजुर नामके ग्रन्थ हैं वे सभी संस्कृतके अनूदित हैं। उनके सात भाग हैं। विनय, प्रज्ञा, पारमिता, अवतंसक, रत्नकूट, निर्वाण, सूत्र और तन्त्र तॅंजुर ग्रन्थोंकी व्याख्याएँ और व्यवहार सम्बन्धी आदेश हैं। चीनी यात्री हुएनत्सांगके जीवनसे जान पड़ता है कि वह यहांसे भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके प्रायः ५०० ग्रन्थ ले गया था।

जिस प्रकार भगवान राम और कृष्णको केन्द्र बनाकर बहुतसे नाटकों और काव्योंकी रचना हुई है उसी प्रकार भगवान बुद्धके सम्बन्धमें पर्याप्त रूपसे काव्य रचना हुई है। बौद्ध कवियोंमें अश्वघोषका प्रमुख स्थान है। उनके बुद्धचरित्रके कुछ उद्धरण इस पुस्तकमें बुद्धदेवके जीवनके सम्बन्धमें आये हैं, इसके सिवा उनका सौन्दरानन्द आदि बड़ा सुन्दर काव्य है। उनके नाटकके भी कुछ छिन्न अंश मिले हैं जो भारतीय नाटक साहित्य की प्राचीनता सिद्ध करनेमें सहायक हुए हैं। महायान सम्प्रदायमें अश्वघोषके अतिरिक्त मातृचेट और आर्यशूर नामके दो और कवि हुए हैं।

बुद्ध महाराजके जीवन चरित्रके सम्बन्धमें बहुत कुछ काव्य साहित्य संस्कृत में मौजूद है उनमें महावस्तु और ललित विस्तार मुख्य हैं। महावस्तुका संबंध

लोकोत्तरवादी शाखासे है। ये लोग ऐसा मानते हैं कि भगवान बुद्धका जन्म केवल लीलाके लिये होता है परमार्थतः नहीं। इस ग्रन्थमें बुद्धदेवके जीवन चरित्रके साथ जातक कहानियां और धार्मिक व्याख्याके सूत्र हैं। ललित विस्तारमें भगवान बुद्ध की लीलाओंका वर्णन है। इस ग्रन्थमें भगवान बुद्धने आनन्दसे गीताका 'मामेक शरणं व्रज' का-सा शरणागतिका महत्व बतलाया है। भक्ति और शरणागतिका भाव महायान शाखामें हिन्दुओंका सा ही है। महावस्तुमें यद्यपि महायान प्रभाव है तथापि उसका सम्बन्ध हीनयान मतसे है। ललित विस्तर पूर्णतया महायान शाखाका ग्रन्थ है।

बुद्धदेवके पूर्व जन्मकी कथाओंसे सम्बन्ध रखनेवाला अवदान साहित्य भी बड़े महत्वका है। अवदानका अर्थ है कोई उल्लेख योग्य कार्य है। अवदान शतकमें सौ अवदान हैं। अवदान शतक ग्रन्थका अनुवाद ईसाके दो सौ वर्ष बाद चीनी भाषामें हो गया था। अवदानकी परम्परा बहुत काल तक चलती रही। काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्रकी अवदान कल्पलता इस परम्पराका अन्तिम एवं विशेष महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। काव्यकी दृष्टिसे यह बड़ा सुन्दर ग्रन्थ है। इसमें अलङ्कार आदि की अच्छी योजना है।

इनके अतिरिक्त महायान सम्प्रदायमें जीवनचरित्रके साथ मिले जुले सिद्धान्त प्रतिपादक ग्रन्थ भी हैं। वे सूत्रोंके नामसे प्रख्यात हैं। इनमें सद्धर्म पुण्डरीक विशेष महत्त्वका है। महायान ग्रन्थोंमें बुद्ध भगवानका चरित्र लौकिक न रहकर दिव्य हो जाता है। साकेत और गोलोककी भांति वे सैकड़ों देवताओं और बोधितसत्वोंसे घिरे हुए गृध्रकूटपर विराजते हैं। वहांसे वे अपनी ज्ञान ज्योतिकी प्रभा विकीर्ण करते हुए संसारका उद्धार करते रहते हैं।

इसी प्रकारका एक और सूत्र है उसमें अवलोकितेश्वरका गुण गान है उसका नाम हैं अवलोकितेश्वर गुणकाण्ड व्यूह। इस प्रकार सुखावती व्यूहमें

प्रति मासकी महिमा गायी गयी है। दार्शनिक सूत्रोंमें प्रज्ञापरिमितायें बहुत पुरस्कृत है। इनमें बोधिसत्व की ६ प्रकारकी परिमिताओं अर्थात् पूर्णताओंका वर्णन है। इनका बड़ा विस्तार है। कई तो एक-एक लाख श्लोकों की हैं जिस प्रकार प्रज्ञापरिमिताओंमें शून्यवादका प्रचार है उसी प्रकार सद्धर्मलङ्कावतारमें विज्ञानवादका बौद्धोंके दार्शनिक और तर्क शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थोंका भी बड़ा विस्तार है। बौद्धोंके सिद्धान्तोंके खण्डनमें हिन्दू दार्शनिक चिन्तनका बहुत कुछ विस्तार हुआ है। बौद्ध आचार्योंकी विचारधारा भारतीय न्याय शास्त्रके विकासमें बहुत कुछ सहायक हुई। नागार्जुन, आर्यदेव, वसुबन्धु, असंग, शान्तिदेव, दिङ्नाग और धर्मपालके नाम बौद्धोंमें ही नहीं वरन् हिन्दू दार्शनिकोंमें भी प्रतिष्ठित हैं। नागार्जुन माध्यमिक सम्प्रदायके आचार्य थे। इन्होंको काणदेव भी कहते हैं। ये शायद एकाक्षी थे। आचार्य असंग योगाचारके प्रधान आचार्य थे। दिङ्नाग वास्तवमें आचार्योंमें दिग्गज थे। ये बौद्ध न्यायके प्रवर्तक माने जाते हैं। कहा जाता है कि इन्होंने अपनी पुस्तक (रत्न समुच्चय) पूरी करनेसे पूर्व निर्वाणको भी प्राप्त होना स्वीकार नहीं किया था। बौद्धोंके कारण भारतीय तर्कशास्त्रकी परम्परा बहुत आगे बढ़ी है। कला, साहित्य और अहिंसात्मक विचारोंके लिए भारतवर्ष बौद्ध धर्मका घर था।